सुमिरन
प्रभु की मीठी याद

कृपाल सिंह

‘सुमिरन : प्रभु की मीठी याद’

प्रथम अंग्रेज़ी संस्करण : 1954
हिन्दी संस्करण : 2021

मुद्रक :

विषय–सूची

परम संत कृपाल सिंह जी महाराज
(1894-1974)

विद्यालय की औपचारिक शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद 17 वर्ष की आयु में आपने फ़ैसला किया, "प्रभु पहले और संसार बाद में" और आध्यात्मिक परिपूर्णता के लिए तीव्र खोज शुरू कर दी। आप अनेकों धर्म, मतों और विचार धाराओं के महापुरुषों और योगी जनों से मिले और उनके दावों को बारीक़ी से जाँचा, परखा। आपकी यह सच्ची खोज अंत में, सन् 1924 ई. में आपको ब्यास के महान संत, हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज (1858-1948) के चरणों में ले गई। अगले चौबीस वर्षों तक आपने हुज़ूर के मार्गदर्शन में अपना आध्यात्मिक विकास किया और उनके मिशन में विभिन्न प्रकार के सेवा कार्य किए।

हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी ने आकाशवाणी की थी कि संसार में आध्यात्मिक जागृति होने वाली है और उन्हीं के आदेश पर, सन् 1948 में संत कृपाल सिंह जी ने आध्यात्मिक कार्यभार संभाला और संतों के शाश्वत संदेश को एक संपूर्ण विज्ञान के रूप में पेश किया। आपने तीन विश्व दौरे किए (1955, 1963 एवं 1972), और अंग्रेज़ी तथा अन्य भाषाओं में, अध्यात्म के हरेक मुख्य विषय पर, अनेकों पुस्तकें प्रकाशित कीं। आपने अस्सी हज़ार चार सौ छियालीस जिज्ञासुओं को दीक्षित किया तथा लाखों लोगों ने गवाही दी कि उनका जीवन सुधर गया है।

परम संत कृपाल सिंह जी ने 'वर्ल्ड काउंसिल ऑफ़ रिलिजन्स' (विश्व धर्म संघ) की स्थापना की और इसके पहले चार सम्मेलनों (1957, 1960, 1965 एवं 1970) की अध्यक्षता भी की। 1970 में आपने देहरादून में 'मानव–केन्द्र' की स्थापना की, जिसके द्वारा आपने संदेश दिया कि हम एक सच्चे इंसान बनें और इंसान, ज़मीन एवं जानवरों की सेवा भी करें।

परम संत कृपाल सिंह जी से पहले, संसार में भौतिकवाद छाया हुआ था, रूहानियत लोप हो चुकी थी और एक धर्म का नेता दूसरे धर्म के लोगों से बात करने को तैयार नहीं था। यह उनकी कोशिशों का फल है कि आज संसार में आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति पहले से बहुत अधिक जागरूकता है और आज विभिन्न धर्मों के अगुआ एक दूसरे से वार्ता करने के लिए तैयार रहते हैं।

परम संत कृपाल सिंह जी का रूहानी मिशन, जो कि छब्बीस वर्ष चला, 21 अगस्त, 1974 को समाप्त हो गया। उनके कार्य को अगामी 15 वर्षों तक (1974 से 1989 तक) दयाल पुरुष संत दर्शन सिंह जी ने आगे बढ़ाया। आज भी उनका मिशन संत राजिन्दर सिंह जी के नेतृत्व में फल–फूल रहा है। ❧

भूमिका

प्यारे भाइयों और बहनों,

श्री खन्ना ने मुझे अपने जन्मदिन पर कुछ सन्देश देने को कहा है। मेरा शारीरिक जन्म 6 फ़रवरी 1894 को हुआ था, लेकिन मेरा सच्चा जन्मदिन उस दिन हुआ जब मैं अपने गुरु सावन सिंह जी महाराज के चरण कमलों में बैठा, यानी फ़रवरी 1924 में। इससे भी सच्ची तारीख़ वह है, जब 1917 में मैं अपने देहाध्यास से परे, अपने गुरु से उनके दिव्य स्वरूप में मिला, यानी उनसे भौतिक रूप में मिलने से सात वर्ष पहले।

मैं सभी पूर्ववर्ती संतों के धर्मग्रन्थों का सम्मान करता हूँ, क्योंकि वे सभी प्रभु की प्रेरणा से दिए गए हैं। यह मेरा सौभाग्य था कि मुझे अपने गुरु के चरणों में बैठने का मौक़ा मिला। जो भी कुछ मुझे अपने गुरु से मिला है, वही मैं आज आपको सौंप रहा हूँ। मुझे यह पुरातन संत–महात्मों के वचनों के समानांतर प्रतीत होता है। उनके कथनों में अन्तर केवल भाषा का या अभिव्यक्त करने के तरीक़े का है, लेकिन विषय–वस्तु एक ही है। वे बताते हैं कि हमने अपनी आत्मा को किस तरह से मन–माया से मुक्त कराना है और स्वयं को तथा प्रभु को जानना है। नामदान के समय सत्गुरु सदा अपने शिष्य के साथ हो बैठते हैं। वे उसके साथ सृष्टि में अन्त तक भी रहते हैं और सदा उसकी यथासम्भव सहायता करते रहते हैं। वे अपने शिष्य को "कभी नहीं छोड़ते, न ही कभी त्यागते।" जिस किसी का विश्वास अपने सत्गुरु पर दृढ़ होता है, वे उसे सदा सम्पूर्ण शान्ति प्रदान करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिए आशा है। गुरु–शक्ति पापियों का उद्धार के लिए और उन्हें प्रभु के रास्ते पर प्रशस्त करने के लिए इस संसार में आती है। उसके प्रति समर्पित रहना और उसके आदेशों का पालन करना हम पर निर्भर है। बाक़ी उसका अपना काम है। प्रभु प्रेम है, आप भी प्रेम हैं। प्रेम ही ईश्वर से मिलन का प्रबल गुण है। "वह जो प्यार नहीं कर सकता, वह ईश्वर

को नहीं जान सकता।" इसलिए, "आप अपने प्रभु से अपने पूरे हृदय से, अपनी आत्मा से और अपने मन से प्रेम करें।" मैं चाहता हूँ कि आप शब्द के करने वाले बनें, न कि मात्र सुनने वाले, क्योंकि एक छंटांक अभ्यास का, मनों सिद्धांतों से कहीं ज़्यादा मूल्यवान है। ज़रूरत है, सुधारकों की, ख़ुद के, न कि दूसरों के। आपको प्रभुत्व का वेतन प्राप्त होगा। मैं आपको प्रभु के मार्ग, जो कि आपके भीतर है, पर प्रशस्त होने के लिए आपके प्रयासों में प्रभुगति की कामना करता हूँ। मेरा प्यार और मेरी सारी शुभकामनायें आपके साथ हैं और सदा रहेंगी। जीवन के रहस्य की गुत्थी तब सुलझती है, तब हम ऐसे व्यक्ति को ढूंढ लेते हैं, जिसने इसका हल स्वयं के लिए निकाल लिया है। ऐसे व्यक्ति को हम कैसे पायें? जिसने स्वयं इस रहस्य को पा लिया है, वही उस शाश्वत सत्य को पाने में मददगार हो सकता है।

किसी ने गुरु नानक जी से प्रश्न पूछा कि सच्चा एवं वास्तविक गुरु किस प्रकार मिलता है, और उसकी पहचान के कौन–कौन से चिन्ह हैं। गुरु नानक जी ने उत्तर दिया, "मानव शरीर ही प्रभु का हरिमन्दिर है, और हम अन्तर्मुख होकर प्रभु से जुड़ सकते हैं।" शरीर के इस घर के भीतर एक अन्य घर का रास्ता जाता है (निजघर या सचखंड), जो सच्चा घर है, और यहीं आत्मा शाश्वत शान्ति प्राप्त करती है। मानव शरीर किराये के घर के समान है, जो हमें कुछ ही समय के लिए (अर्थात पूर्व नियोजित जीवनकाल के) मिला है, जबतक कि आत्मा अपने सदा के महाआनंद वाले शाश्वत घर का मार्ग प्रशस्त करने हेतु विवेक प्राप्त नहीं प्राप्त कर लेती। अब वास्तविक और सच्चा सत्गुरु वह है, जो हमें इस शरीर में ईश्वर के राज्य का रास्ता दिखाता है और आत्मा को एक से दूसरी अवस्था तक ले जस सकता है, जब तक आत्मा इस राज्य को ग्रहण कर पुनः अपनी असली रूप में लौट नहीं आती है।

मानव शरीर किसी भी भौतिक वस्तु की भाँति विनाशशील तथा खंडनशील है। यह संसार भी प्रलय भोगता है। परन्तु प्रभु का साम्राज्य, सचखंड ही विनाशरहित और शाश्वत है। प्रलय की प्रक्रिया का प्रभाव त्रिलोकी के मंडलों (भौतिक, सूक्ष्म तथा कारण) तक होता है तथा महाप्रलय का महाकारण मंडल तक, परन्तु यह सचखंड (सतलोक या 'मुक़ाम–ए–हक़' जैसा कि मुसलमान इसे कहते हैं या जो ईसाइयों का 'नया येरूसलम'

है), जो प्रभु का साम्राज्य है। इसलिए संतों ने सचखंड को ही अपना ध्येय बनाया है, जो कि प्रलय और महाप्रलय के परे है।

आगे, सत्गुरु या सच्चा गुरु प्रभु के साम्राज्य की ओर इंगित करते है। वह हमें बताता है कि हमारे शरीर में हर समय पाँच तानों या धुनों से रचा दिव्य संगीत बज रहा है। ये निरंतर स्वरलहरियाँ सृष्टिकर्ता और सृष्टि के बीच की कड़ी है। ये वो सीढ़ी है, जिस पर आत्मा को क़दम दर क़दम अपनी प्रभु के साम्राज्य की यात्रा चढ़ना पड़ता है। यह दिव्य संगीत अति मधुर है, जिसका धरती पर कोई सानी नहीं। इसमें अत्यधिक आकर्षण एवं अप्रतिरोधक आग्रह है। ये विभिन्न स्वर सहंसदल–कंवल (हज़ार पँखुड़ियों का कमल) से प्रारम्भ होकर सचखंड तक पहुँचते हैं। सत्गुरु मानवीय आत्मा को इन धुनों के निम्नतर स्वर पर सम्बन्ध प्रदान करता है। इसके अलावा वह शरीर से चेतनधारा के निकास का भी कुछ अनुभव प्रदान करता है। इन दोनों का विकास हर रोज़ साधना के द्वारा करना होता है।

सत्गुरु अपने साथ संसार में 'नाम' का ख़ज़ाना भी लाते हैं। मुसलमान इसे 'निदा–ए–आसमानी' (स्वार्गिक संगीत) कहते हैं और ईसाई इसे 'वर्ड' की तरह वर्णित करते हैं। नाम का ख़ज़ाना किसी देश, जाति, क़ौम, धर्म आदि विशेष की विरासत नहीं है। अब, यह नाम का ख़ज़ाना सत्गुरु द्वारा सभी को बिना इन लिहाज़ों के प्रदान किया जाता है। बिना किसी और चीज में फंसे हुए वह नाम का ख़ज़ाना बाँटता है। कोई अभिलाषी ब्राह्मण या क्षत्रिय, हिन्दू या मुस्लिम या कोई अन्य भी हो सकता है, क्योंकि इनसे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। हममें से प्रत्येक जीवन की कला और अध्यात्म–विज्ञान को सीख सकता है, जिसके द्वारा प्रभु के साम्राज्य, जो कि समान रूप से प्रत्येक की विरासत है तथा जीवन का सार, का मार्ग प्रशस्त किया जा सके।

पुनः सत्गुरु की जीवात्मा संसार में किसी भी चोले में आ सकती है, जिसे वह स्वयं चुनता है। अध्यात्म के जिज्ञासु को इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। इस प्रकार की कोई भी मान्यता ज़रूर एक बाधा तथा असुविधा होगी। सत्गुरु से हमारा सम्बन्ध मात्र आत्मिक है, न कि सांसारिक। यद्यपि संत कबीर एक मुस्लिम जुलाहे थे, उनके शिष्यों में बीर सिंह, बघेलसिंह जैसे राजपूत थे। ऐसे ही संत रविदास जी, जो कि पेशे से मोची थे, के पावन समूह में मीरा बाई, जो कि राजपूत राजकुमारी थी और राजा पीपा

आदि शामिल थे। हमें मात्र यह निश्चित करना होता है कि गुरु शब्द–स्नेही हों अर्थात वो जो स्वयं देह–स्वरूप शब्द हों तथा औरों को भी शब्द या शब्द सिद्धांत का अनुभव दे पाने में सक्षम हों। यदि वे सारी शर्तों पर खरे उतरते हैं, तो हमें किसी भी अन्य आधार पर उन्हें स्वीकारने में और उनसे अध्यात्म–विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

ब्रह्मण्ड पिंड में बसता है। मानवीय शरीर ब्रह्मंड का लघु रूप में एक नमूना और इससे भी कहीं अधिक है। सृष्टि में अनंत सूर्य, चाँद व पृथ्वी हैं जो दिन–रात परिक्रमा करते रहते हैं। मधुर से मधुरतम संगीत भी का सच्चे राजा के सच्चा सिंहासन से प्रस्फुटित होकर इनमें बज रहा है।

एक मुस्लिम फ़क़ीर इस के बारे में कहते हैं :

जब मैंने इस स्वार्गिक गान की मधुर
तानें सुनीं, तो इसके दिव्य नशे के सामने
मुसलमानों का सबसे पावन धर्मस्थान,
का'बा और मूर्तिपूजकों का मन्दिर–
दोनों ही बुरे व्यंगचित्र नज़र आये।

मौलाना रूमी कहते हैं :

चीस्त रूहआँ तायरे-कुदसी सिफ़त,
दर क़फ़स महबूस बहरे-मअरिफ़्त।
आमदा बहरे-तिजारत अज़ अदम,
रू बदां सू बाशद ऊ रा दम-ब-दम।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 6, पृ.521)

(संत ईश्वर के सच्चे भक्त हैं, जो सदा इस दिव्य संगीत को अपने भीतर सुनते हैं, जो प्रभु के प्रेमियों में जीवन उंडेलता है।)

एक अन्य मुस्लिम संत, शम्स तबरेज़ इस संगीत के बारे कहते हैं :

हररोजे़ पंज नौबत बर दरे-ऊ,
हमीं कोबंद कौसे-किब्रयाई।
अगर उफ़्तद-बगोशत सौते-आँ कौस,
क्रिब ओ अज़ हसद या-बे रहाई।

– दीवाने–शम्स तबरेज़ (पृ.405)

(हर रोज़ मालिक के दर पर पाँच नौबतें उसकी तारीफ़ का नगाड़ा बजाती हैं। अगर उस नक़्क़ारे की आवाज़ हमारे कानों में आ जाए, तो ख़ुदी और ईर्ष्या से छुटकारा मिल जाए।)

इसे अलौकिक संगीत का स्वरूप अनोखा है। कोई भी भाषा इसका वर्णन नहीं कर सकती है– न तुर्की, न अरबी, न फ़ारसी, और न ही कोई अन्य। यह वास्तव में एक अवर्णित भाषा है और आप में एक अलिखित क़ानून।

पैग़म्बर मोहम्मद ने एक बार घोषणा की कि वे ईश्वर की आवाज़ को सुन पाते हैं, बिल्कुल ऐसे, जैसे किसी अन्य अवाज़ को। लेकिन फिर प्रश्न किया गया कि बाक़ी लोगों को इसकी आवाज़ क्यों नहीं सुनाई देती, तो उन्होंने कहा, "तुम इस आवाज़ को इसलिए नहीं सुन सकते क्योंकि तुम्हारे कान बन्द हो चुके हैं। किसी सत्गुरु की शरण में जाकर यह प्रार्थना करो कि वे इस सील को तोड़ दें, और जब वे ऐसा कर दें, तो अपने दिल की गहराइयों में इसे सुनो।"

श्रीमति एन्नी बेसेंट, जो कि एक समाज सुधारक थीं, इसे "मौन की ध्वनि" कहती है और कहती हैं कि मौन तब बोलने वाला होता है, जब दिमाग़ सम्पूर्ण रूप से एकचित्त होता है।

ईसा मसीह कहते हैं :

ईश्वर का साम्राज्य तुम्हारे अन्दर है।

– पवित्र बाइबिल (लूका 17:21)

परेशानी यह है हम इसकी खोज बाह्य रूप से करते हैं,जहाँ यह मिलता नहीं। मनुष्य ने प्रभु की खोज करने में कोई क़सर नहीं छोड़ी है। उसने गंगा जैसी पवित्र नदियों, बद्रीनाथ, कैलाश, अमरनाथ जैसे बर्फ़ से ढ़के पर्वतों में, घने जंगलों में एवं कालातीत पवित्र धर्मस्थलों में उसे ढूंढ़ने के लिए प्रयास किया, पर असफलता के साथ। क्योंकि प्रभु को पाने का मार्ग भीतर है, किसी महात्मा को खोजना होगा, जो उस मार्ग को भली–भाँति जानता है और तब तक मार्गदर्शन करता है, जब तक कि लक्ष्य प्राप्त न हो सके। यह कार्य कोई सच्चा सत्गुरु ही कर सकता है, कोई अन्य नहीं।

अब प्रश्न उठता है कि इस दिव्य संगीत से सम्बन्ध कहाँ किया जा सकता है? इस पर सत्गुरु उत्तर देते हैं कि यह दिव्य संगीत सुखमना (इड़ा

और पिंगला की बीच की नाड़ियाँ या मुसलमानों के शाहरग, जो रीढ़ की हड्डी से निकलकर दोनों आँखों के भूमध्य होती हुई सीधा सचखंड पहुँचती है) में चल रहा है। इसका अनुभव आत्मा द्वारा गहनतम गहराई में परत–दर–परत, इसके (भौतिक या स्थूल, मानसिक या सूक्ष्म व कारण) कोशों को उतार कर किया जा सकता है, जब आत्मा अंतरीय लोकों की अपनी यात्रा करती है, जैसे कि सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पित्रयान व देवियान पथ इत्यादि। हर अवस्था पर यह संगीत पहले की तुलना में अधिक मधुर होता जाता है, जब तक यह (तीनों लोको से परे) पारब्रह्म नहीं पहुँच जाती, जहाँ यह अपने आदि–प्रताप में स्वःज्योतिर्मय नहीं हो जाती। यहाँ यह दिव्य संगीत अत्यधिक मनमोहक हो जाता है, अपनी अनवरत गतिशील पूर्ण उद्वेग में। यह अजपा जाप है, जो बिना शब्दों की भाषा में निरन्तर चलता रहता है। जैसे ही आत्मा इसे सुनती है, उस पर इस संगीत का जादू चल जाता है और इसके परिणामस्वरूप, मन और इसकी बाहरमुखी इन्द्रियाँ, सब इसके प्रभाव में आकर निष्प्रभाव हो जाती हैं क्योंकि अब इन्हें आत्मा द्वारा प्रदत्त प्रेरणा प्राप्त नहीं हो पाती, और धीरे–धीरे ये आत्मा पर अपनी पकड़ खो देती है। उच्च वर्ग में जन्मी बालिका (सतनाम के महासागर की एक बूंद होने के कारण) इसके चंगुल से निकल जाती है और अब स्वतन्त्र रूप से विचरने लगती है।

इन कोमल स्वरलहरियों का शब्दों में वर्णन करना वास्तव में नामुमकिन है क्योंकि ये विवरण के परे तथा वर्णनातीत हैं।

वर्तमान में मन से जुड़ रहने के कारण प्रत्येक आत्मा ने बाहिर्मुखी इन्द्रियों द्वारा नीचे तथा बाहर की ओर बहने की प्रवृत्ति प्राप्त कर ली है। इसके कारण वह अपने अन्दर शब्द–धारा (जीवन के अमृत) को पकड़ नहीं पाती है। यदि एक प्याला पलट कर उल्टा कर दिया जाये और कई युगों तक बारिश में पड़ा रहे, फिर भी उसमें एक भी बूंद नहीं गिर सकती। परन्तु यदि इस प्याले को सीधा रख दिया, तो यह एक या दो बौछारों में ही भर जायेगा। ठीक यही स्थिति आत्मा की भी है। जैसे ही सत्गुरु इसका जीवनदायिनी शब्द–धारा से सम्पर्क करा देते हैं, इसमें से आत्मिक धाराओं का निकास करके सीधा कर देते हैं, तो यह आत्मिक कमल जैसा

प्याला अधिक से अधिक अमरत्व के जल को प्राप्त कर पूरी तरह से भीग कर शाश्वत जीवन पा जाता है।

मन सदा एक या दूसरे प्रकार के आनन्द के पीछे दौड़ता रहता है, लेकिन इस संसार के सभी आनन्द अस्थायी हैं और इनमें सदा ही कोई न कोई चुभन भरी होती है। एक अंग्रेज़ी कवि कहता है कि हमारी निष्कपट हंसी में भी दर्द छिपा होता है।

विश्वासघाती मन को तभी वश में किया जा सकता है, जब इसे बाहरी विलास के बदले अन्तर में आनन्ददायी मधुर दिव्य संगीत– शब्द– सुनाई देने लगे। जब मन इस मीठे रस का पान करता है, यह दुनियावी भोगों–रसों से विरक्त होने लगता है और क़ाबू में आ जाता है। और अब आत्मा मुक्त हो जाती है। यह एकमात्र तरीक़ा है, जिसके द्वारा महापुरुष मन को नियन्त्रित करते आए हैं। सभी युगों में यह सफल हुआ है– सतयुग, त्रेता, द्वापर और आज कलियुग या लौह युग में भी। 'सत्' शाश्वत है। यह शुरूआत में था, मध्य में था और यह शाश्वतकाल तक सदा रहेगा। सत् का दिव्य संगीत ही मन को शान्त करने का सर्वश्रेष्ठ तरीक़ा है। समय के साथ–साथ, नियमित अभ्यास से, आत्मा पूरी तरह नाम के अमृत में डूब जाती है और मन सम्पूर्ण रूप से प्रभावहीन हो जाता है।

जैसा कि पहले कहा गया है, शब्द–धारा तुरीयपद से शुरू होती है, जब संवेगात्मक धाराओं के शरीर से निकाल दिए जाने पर, आत्मा परलोकगमन करने लगती है। पाँच स्वरलहरियाँ एक के बाद एक, एक से दूसरे मंडल तक ले जाती हैं, जब आत्मा सचखंड तक नहीं पहुँच जाती। एक से दूसरे पद तक पहुँचने के लिए इन स्वरलहरियों या धुनों को एक–एक करके पकड़ना होता है, जब तक अन्तिम पद न आ जाए। यहाँ पहुँचकर ही आत्मा का मोक्ष निश्चित होता है और जन्म–मरण के बन्धन से आत्मा हमेशा हमेशा के लिए आज़ाद हो जाती है। यही जीवन का विशाल उद्देश्य है, जिसे केवल सत्गुरु में कृपा से पूरा किया जा सकता है।

सूफ़ी–संत शम्स तबरेज़ कहते हैं :

आवारगी नविश्त शुदा, बस खाना फ़ामोशत शुदा,
आँ गन्दा पीरे-क़ाबली ब्रस सिहर करदत अज़् दग़ा।

— कुल्लीयाते–शम्स तबरेज़ (पृ.37)

(महान प्रभु ने हमें बाहर निकाल दिया है और आँखों के पीछे दृढ़ता से दरवाज़े बन्द कर दिये है। वह स्वयं हमारे पास इंसानी चोले में आता है, हमें वापस अपनी टोली में ले जाने को।)

वो साधन, जिसके द्वारा वह हमें अन्तर्मुख करता है, उसकी व्याख्या इस प्रकार है :

कि इससे पहले कि वह गगन में संगीत की पाँच धुनें सुनने लगे, सबसे पहले हमें आत्मा को उसकी चुप्पी में लौटाना है। सम्पूर्ण आत्मिक धारा को भ्रूमध्य आत्मिक केन्द्र में लौटाना है। आंतरिक सफ़र इस अवस्था से, जो कि क्रम में नीचे से सातवीं है, शुरू होता है। जब आत्मा पिंड के छः चक्रों के ऊपर उठकर सातवीं अवस्था, सहँसदलकंवल पहुँचती है, यहाँ यह दिव्य संगीत की सबसे पहली धुन सुनती है और आगे बढ़ती है। नीचे के छः चक्रों में 'नाम' नहीं होता है। यह भौतिक शरीर वास्तव में वो कब्र है, जिससे हमें ऊपर उठकर उस बिन्दु तक पहुँचना है, जहाँ से ग्रांड–ट्रंक रोड अर्थात 'अध्यात्म का राजपथ' शुरू होता है।

एक अन्य संत कहते हैं :

ख़ामोश ओ पंज नौबत बिशनौ ज़-आसमाने,
क-आँ आसमाने बेरूँ जां हफ़त ओ ईं शश आमद।

— दीवाने–शम्स तबरेज़ (पृ.138)

(चुप होकर, गगन से जो पाँच नौबतें सुनाई द रही हैं, अनको सुन। वह गगन छः चक्रों और सातवें आसमान से परे है।)

ब हफ्तम चर्ख़ नौबत पंच दारी,
चू ख़ैमा ज़ शश जहत बरकंदा बाशी।

— कुल्लीयाते–शम्स तबरेज़ (पृ.824)

(जीव इन छः चक्रों से अपना डेरा उठा ले और सातवें आसमान पर आ जाये, तो ये पाँच नौबतें उस स्थान पर बजती हुई सुनाई देंगी।)

लगभग सभी संतों ने सत्गुरु के एक जैसे ही गुणों का बखान किया है। गुरु नानक देव जी कहते हैं :

सो गुरु करउ जि साचु दृड़ावै॥

अकथु कथावै सबदि मिलावै।।

— आदि ग्रंथ (धनासरी म॰1, पृ॰686)

"जो तुम्हें सत्य, 'नाम' का अनुभव दे सके, उस व्यक्ति को तुम गुरु स्वीकार करो। निःसन्देह, यह वस्तु अवर्णनीय है, लेकिन हमें उसका कुछ न कुछ सम्पर्क मिलना चाहिए।" संक्षेप में, जो कौई हमें 'शब्द'– दिव्य संगीत– से जोड़ सकता है। कबीर साहिब ने भी इसी प्रकार इस सम्बन्ध में कहा है :

साधु मेरे सब बड़े, अपनी अपनी ठौर।
सबद बिबेक पारखी, सो माथे के मौर।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (बिबेक का अंग 2, पृ.144)

स्वामी शिवदयाल सिंह जी ने भी ऐसा ही कहा है :

गुरु सोई जो शब्द सनेही। शब्द बिना दूसर नहिं सेई।
शब्द कमावे सो गुरु पूरा। उन चरनन की हो जा धूरा।

— सार बचन (बचन 13, शब्द 1)

वह 'शब्द'–सदेह है, जो चमड़े के रूप में 'शब्द' है और हमारे बीच रहा है और हमारा सम्पर्क उससे कराता है। वही सभी संतों द्वारा सबसे उच्च कोटि का माना जाता है। सभी पवित्र धर्मग्रन्थ उसकी महानता की गाथा सुनाते हैं।

केवल प्रभु–कृपा से ही जीव ऐसे सत्गुरु या पथ–प्रर्दशक के सम्पर्क में आता है, जिसे सुरत–शब्द योग के विज्ञान का सम्पूर्ण ज्ञान हो। ऐसा गुरु, अपनी असीम दया–मेहर से उसे अपने से जोड़ लेता है और उसका सम्पर्क शब्द–धारा से कराता है और इस प्रकार, उसको अन्तिम मुक्ति के पथ पर प्रशस्त करता है। गुरु नानक कहते हैं कि वे प्रशंसक हैं उस मनुष्य के, जो इस प्रकार अपने सच्चे घर पहुँच जैसा कि गुरु नानक ने इसका वर्णन किया है, सुरत–शब्द योग का पथ सबसे अधिक प्राकृतिक है। इसका अभ्यास कोई भी– चाहे वह आदमी हो, औरत हो, जवान हो या बूढ़ा हो– कर सकता है, यहाँ तक कि एक बच्चा भी आसानी से इसका अभ्यास कर सकता है। इसकी परिकल्पना स्वयं प्रभु द्वारा की गई है, न कि किसी मानवीय

माध्यम द्वारा, और इसलिए इसमें न तो कोई वृद्धि, नही कोई परिवर्तन या संशोधन किया जा सकता है।

यह प्रभु का क़ानून है कि कोई भी, सिवाय सत्गुरु के माध्यम के, उस तक नहीं पहुँच सकता। जितने भी संत आज तक आये हैं, उन्होंने यही बताया है।

सत्गुरु हमें सिखाते हैं कि कैसे शरीर के ऊपर उठकर शब्द–धारा का आन्तरिक सम्पर्क करना है। अनेक ऐसे तरीक़े हैं, जिनके द्वारा हम शरीर से ऊपर उठ सकते हैं, परन्तु संतों ने सबसे प्राकृतिक एवं सबसे द्रुतगामी युक्ति बतायी है, जिसको सुमिरन या प्रभु के ज़ाती नामों की पुनरावृत्ति से प्राप्त किया जा सकता है। तो मैं इस विषय को विस्तार से प्रस्तुत करना चाहूँगा, जो अन्तर्मुख होने का सबसे महत्वपूर्ण प्रथम क़दम है। जहाँ तक 'नाम' या 'शब्द' का सम्बन्ध है, मैं अलग से इस विषय पर व्याख्या कर चुका हूँ। अब मै सुमिरन के बारे में कुछ कहना चाहूँगा।

सुमिरन

संसार में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी प्रकार का सुमिरन कर रहा है। वास्तव में बिना इसके हम रह नहीं सकते। उदाहरण के लिए, एक ग्रहणी हर समय रसोई की आवश्यकताओं के बारे में, जैसे– आटा, दालें, मसाले और काली मिर्च आदि के बारे में सोचती रहती है कि कहीं कोई चीज़ कम न पड़ जाये। वह हमेशा स्वादिष्ट पकवान और नई खान–पान की चीज़ें बनाने की विधियाँ सोचती रहती है। इसी प्रकार, एक किसान हमेशा अपने जानवरों और उनके के चारे के अलावा, खेत जोतने, खुदाई के, बीज बोने के और कटाई के बारे में सोचता रहता है। एक दुकानदार पहले से ही अपने विक्री के माल में व्यस्त रहता है और वस्तुओं के दामों के उतार–चढ़ाव के बारे में बहुत बारीक़ी से जागरूक होता है और ब्याज के मुनाफ़े को और बढ़ाने के बारे में सोचता रहता है। एक स्कूल में अध्यापक, बिल्कुल ऐसे ही, स्कूल, कक्षा, अपने छात्रों और पाठ के स्वप्न देखता है, जिन सब पर उसका ध्यान बारीक़ी से टिका रहता है। फिर, एक ठेकेदार अपने कार्मियों की समस्याओं, साधनों की उपलब्धता और अन्य ईमारत बनाने की प्रक्रियाओं से सम्बन्धित समस्याओं से घिरा होता है।

इस प्रकार हममें से प्रत्येक लगातार किसी ने किसी समस्या या विचार से घिरे हुए रहता है। इन विचारों से मानव के मस्तिष्क पर अपनी छाप छूट जाती है, जो कि समय के साथ, इतने अमिट रह जाते हैं कि वे व्यक्ति का विषय–वस्तु से पूर्ण तादात्म्य करा बैठते हैं। इसलिए कहा जाता है कि "जैसा सोचोगे, वैसे बन जाओगे," अथवा "जहाँ तुम्हारा मस्तिष्क है, वहीं तुम हो," भले कहीं भी तुम्हारा शरीर हो। इस कारण से संतजन सबसे छोटा मार्ग ग्रहण करते हैं।

क्योंकि कोई भी व्यक्ति बिना सुमिरन नहीं रह सकता, संत एक प्रकार के सुमिरन के स्थान पर दूसरे प्रकार का सुमिरन कराते हैं। वे संसार और सांसारिक सम्बन्धों के सुमिरन को प्रभु के नाम के सुमिरन या 'नाम' से

प्रतिस्थापित करते हैं। जबकि पहला मन को खंडित करता है, तो दूसरा हमें स्वर्ग की तरफ़ खींचता है, जिससे मन की शान्ति और आत्मा की मुक्ति प्रशस्त होती है। दिन में तीन से चार घंटे का सुमिरन बताया गया है, और यह भी धीरे–धीरे बढ़ाया जा सकता है। महात्मा बिना सुमिरन में एक पल भी नहीं रहते हें। यह पूर्णतयाः एक मानसिक प्रक्रिया है। (क्योंकि इसको विचारों की ज़बान से किया जाता है), इसमें कोई शारीरिक और मानसिक श्रम का हस्तक्षेप नहीं है। समय के साथ–साथ, बिल्कुल घड़ी की टिक–टिक के माफ़िक, ये स्वतःचलित और चौबीसों घंटों अनवरत हो जाता है। भले ही हमारे हाथ किसी भी कार्य को कर रहे हों, मन प्रभु में लीन रहता है।

अब मै आपको विस्तारपूर्वक सुमिरन या प्रभु का नाम दोहराने के बारे में हिदायतें देता हूँ।

सभी लोग एक न एक प्रकार का सुमिरन करने में व्यस्त रहते हैं। कुछ लोग सुमिरन मणिकों की जपमाला या सुमिरनी के माध्यम से करते हैं। इस प्रकार के सुमिरन में कोई भी अखंडित रूप से ध्यान बनाये नहीं रह सकता, क्योंकि उसे अपनी अंगुली से मोतियों को सरकाते–सरकाते, गाँठ के आने पर उस क्रिया को उलटना पड़ता है। इस तरीक़े से, एकाग्र मन से भक्ति नहीं हो पाती, जिसके बिना कोई वास्तविक लाभ नहीं मिल पाता। लगातार अभ्यास से अंगुलियाँ स्वतः ही मोतियों को सरकाने की अभ्यस्त हो जाती हैं, जबकि असन्तुलित मन इधर–उधर भटकता रहता है। इसलिए सत्गुरुजन सदा 'विचारों की ज़ुबान' से किये गये मानसिक सुमिरन पर ही ज़ोर देते हैं, क्योंकि एकाग्र मन से किए गए सुमिरन से ही लाभ मिलता है।

पुनः कुछ लोग सुमिरन अपनी जीभ से करते हैं। इस प्रकार का सुमिरन भी जपमाला वाले सुमिरन से बेहतर नहीं होता। इस प्रकार के सुमिरन में ज़बान मुँह में हिलती रहती है, जबकि मन सदैव दौड़ता–भागता रहता है।

कुछ लोग सुमिरन अवटु–ग्रन्थि (Thyroid Gland) के केन्द्र पर करते हैं। इसका भी कोई अधिक लाभ नहीं, जब तक इसे पूरे ध्यान केन्द्रित किए किया न जाये।

कुछ लोग हृदय के केन्द्र पर, लगातार अपने दिल की धड़कन के साथ–साथ, सुमिरन करते हैं। लेकिन यहाँ भी पूरे दिल से ध्यान अनिवार्य है, इससे पहले कि इसका कोई कोई लाभ प्राप्त हो सके।

एक और प्रकार का सुमिरन वो होता है, जिसे प्राण–अपान वायु के स्पंदन के आने–जाने के साथ किया जाता है। यह मात्र एक क्षणभंगुर स्थिरता प्रदान करता है तथा इसका कोई अधिक लाभ नहीं होता।

उपरोक्त जितनी भी साधानायें या अभ्यास हैं, इनका बढ़ते क्रम में पिछले से अधिक लाभ है, परन्तु जब तक इन्हें अविभाजित रूप से ध्यानपूर्वक न किया जाये, इनकी मात्र आंशिक उपयोगिता ही है। इनसे व्यक्ति थोड़ी देर के लिए शान्ति की अनुमूति कर सकता है, पर ये आत्मा का उत्थान करने तथा भूमध्य के पीछे आत्मा के केन्द्र पर ध्यान टिकाने में मददगार नहीं है।

इसलिए संत–सत्गुरु, सदा–सदा से और हर स्थिति में इसकी तह तक जाते रहे हैं– आत्म–सिद्धि, जो देश–काल–निमित्त के परे, उस अपरिवर्तनीय अवस्था का अनुभव है, जो इनसे कहीं अधिक सूक्ष्म, उच्चतर, भव्य, निर्मल तथा शक्तिशाली है। उन्होंने एक उच्चतर स्तरीय सुमिरन की हिदायत दी है, जो मानसिक रूप से प्रभु के द्वार की दहलीज पर दिव्य–धरा पर किया जाता है, जिसके बारे में क्राइस्ट कहते हैं, "खटकाओ, और ये तुम्हारे लिए खुल जायेगा।" – पवित्र बाइबिल (मत्ती 7:7) पुनः सुसमाचारों में एकाग्र मन के ध्यान के बारे में कहा गया है, "यदि तुम्हारी आँख एक होगी, तो तम्हारे समस्त शरीर में ज्योति का विकास हो जायेगा।" – पवित्र बाइबिल (मत्ती 6:22) इस आँख को संस्कृत में शिव–नेत्र या दिव्य–दृष्टि कहा जाता है। मुसलमानों में इसे नुक़्ता–ए–सवेदा कहा जाता है। विलियम वर्ड्सवर्थ, जो एक रूमानी कवि थे, इसको आन्तरिक–चक्षु के रूप में इंगित करते हैं।

मुस्लिम संतों ने सुमिरन या ज़िक्र को पाँच श्रेणियों में वर्गीकृत किया है :

1. 'ज़िक्र–ए–लसानी', जो ज़बान से किया जाये। इसे 'कलमा–ए–शरीअत' या 'नासूत' भी कहा जाता है।

2. 'ज़िक्र–ए–क़ल्बी', जो केवल दिल के द्वारा किया जाये। यह प्राणायाम द्वारा दिल पर ज़ोर देकर किया जाता है। इसको तकनीकी रूप से 'कलमा–ए–तरीक़त' था 'मलकूत' कहा जाता हैं।

3. 'ज़िक्र–ए–रूही', जो तवज्जोह को तीसरे–तिल पर एकत्रित करके किया जाता है। इसको 'कलमा–ए–मार्फ़त' या 'जबरूत' भी कहा जाता है।

4. 'ज़िक्र–ए–सिर्री', जो आन्तरिक भेद को प्राप्त कराता है, जिसमें साधक स्वयं सुमिरन का रूप बन जाता है। इसको 'कलमा–ए–हक़ीक़त' या 'लाहूत' कहा जाता है। और, अंततः,

5. 'ज़िक्र–ए–ख़ाफ़ी', जो मालिक में लीन कराता है, जिसमें साधक जिसका सुमिरन कर रहा होता है, उसमें लीन हो जाता है। यह अविनाशी अवस्था का मुक़ाम है। इसे 'हाहूत' कहा जाता है।

एक मुस्लिम संत, मौलाना रूमी ज़िक्र या सुमिरन के में बारे में बात करते हुए, इसलिए तब केवल ज़िक्र–ए–रूही को आन्तरिक वास्तविकता को प्रदर्शित करने में समर्थ मानते हैं, न कि ज़िक्र–ए–लसानी को।

इसी प्रकार, ऋृषि शांडिल्य ने अपने उपनिषद् में बताया है कि बैखरी सुमिरन, जो मात्र ज़बान से किया जाता है, काफ़ी अच्छा होता है। लेकिन उपांसु, जो साँस के साथ धीरे–धीरे किया जाता है, उससे कहीं अच्छा है और सभी से बेहतर है।

सुमिरन का केन्द्र

अब हमें देखना यह है कि हमें नाम की पुनःरावृति कहाँ करनी है?

दिव्य–भूमि, जहाँ सुमिरन किया जाना चाहिए, दोनों आँखों और भौहों के बीच में है, जिसे विविध प्रकार से त्रि–नेत्र, तीसरा–तिल, शिव–नेत्र अथवा नुक़्ता–ए–सवेदा कहा जाता है। ये सूक्ष्म मंडलों तक पहुँचने का मुख्य द्वार है। जागृत अवस्था में ये आत्मा का स्थान है तथा यह नीचे के छः चक्रों के ऊपर इसका स्थान है। भैतिक मंडल के परे, हमें दोनों– सूक्ष्म व कारण मंडलों को पार करना है। योगीजन जब तक भैतिक मंडल को पार न कर लें, छः चक्रों में विचरते हैं। किन्तु, निचले चक्रों में उतर कर उन्हें भेद कर फिर ऊपर आने के बजाय, यह कहीं अधिक सहज और बेहतर है कि यात्रा को सीधे जागृत अवस्था में आँखों के पीछे आत्मा के केन्द्र से ही शुरू किया जाय। आत्मा को शरीर से ऊपर उठने की सबसे सहज विधि मानसिक सुमिरन ही है, जिसे सत्गुरु के माध्यम से किया जाये।

प्रभु के ज़ाती नाम

अब हम देखते हैं कि सुमिरन क्या है और 'नाम' और 'नामी' का क्या परस्पर सम्बन्ध है।

सुमिरन के लिए दो प्रकार के नाम होते हैं : 1. ज़ाती (निजी) तथा 2. सिफ़ाती (गुण–वाचक)। आम लोग किसी न किसी सिफ़ाती नाम का, जो उन्हें भला लगता है, जाप करते हैं। इसका कुछ हद तक लाभ हो सकता है, परन्तु इसके द्वारा आंतरिक मंडलों के दृष्य नहीं प्रकट हो सकते।

महापुरुष उन ऊँचे देशों के ज़ाती नामों का सुमिरन करते हैं, जो मनुष्य के अन्दर हैं। इसलिए महात्मा से मिले नाम का उच्चारण अपने घट का रास्ता खुलता है। उन नामों में महापुरुष की सिद्धि या आत्मिक चेतना प्रदान करने कर शक्ति होती है, जिसके कारण सुमिरन का फल शीघ्र प्राप्त होता है। इनके अभिसक्त होने के कारण, इनमें आत्मा को आकृष्ट कर उन मंडलों की ओर खींचने की शक्ति होती है, जिनको वे इंगित करते हैं। ये आरोपित लफ़्ज़, जिनमें सत्गुरु की दिव्य–आत्मा का संचार होता है, शीघ्र ही फल देते हैं। क्राइस्ट इस सम्बन्ध में कहते हैं :

> मैं बेल हूँ और तुम इसकी शाखाएँ, और क्योंकि शाखाएँ बिना बेल के गुज़ारा नहीं कर सकतीं, मेरे बिना तुम नहीं जी सकते। इसलिए अपने आप को मुझमें समर्पित कर दो और मेरे शब्दों को अपने अन्दर धारण करो।
>
> – पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 15:4)

इसके अतिरिक्त, सत्गुरु के इन मोहक शब्दों में– प्रभु के ज़ाती नामों में– काल के द्वारा आत्मा के मार्ग में डाली गईं बाधाओं को दूर करने की शक्ति है। इन नामों का सुमिरन भैतिक व परा–भैतिक मंडलों– दोनों में आत्मा की मदद करता है। इसलिए, यह अनिवार्य है उन नामों का सुमिरन किया जाय, जिन्हें सत्गुरु ने सुझाया हो, क्योंकि उनमें एक ऐसी आध्यात्मिक शक्ति मौजूद है, जिसके समक्ष काल शक्ति ठहर नहीं सकती और जिससे वह ऐसे दूर भागती है, जैसे कि वह किसी जादूगर के द्वारा भगाई गई हो। सत्गुरु के ये अमर और शाश्वत शब्द जिस भी जीव में घर कर लेते हैं,

उसे वे अनन्त जीवन प्रदान कर देते हैं। मृत्यु ऐसे जीव के सन्निकट मंडरा नहीं सकती। इसीलिए कहा गया है :

तुम अपने प्रभु के नाम को व्यर्थ नहीं लोगे।

– पवित्र बाइबिल (निर्गमन 20:7)

हर नाम की अपनी महत्ता, प्रभाव, ऊर्जा और शक्ति है। यदि कोई व्यक्ति 'बर्फ़' के बारे सोचता है, तो उसे ठंड और कंपन जो कि इस बर्फ़ से आती है, याद आने लगती है। ऐसे ही 'अग्नि' का विचार हमारे दिमाग़ में उसके गर्मी व तपिश के गुणों को डालता है। 'वकील' का लफ़्ज़ न्यायालयों तथा मुकद्दमों को इंगित करता है, और 'डॉक्टर' का विचार हमें हॉस्पिटलों, रोगियों और दवा–पेटिओं आदि की याद दिलाता है। एक सामान्य कहावत है, "जैसे तुम सोचोगे, वैसे ही हो जाओगे।" कहा जाता है कि विचार ही सफलता की कुँजी है। नाम और उसके नामी के बीच सदा एक मज़बूत कड़ी होती है, और इससे भी ज़यादा और इससे कहीं अधिक ताक़तवर होता है, प्रभु और उसके नाम। ये भी कहा जा सकता है कि प्रभु स्वंय अपने (ज़ाती, न कि सिफ़ाती) नामों में रहते–बसते हैं।

ईश्वर के ज़ाती नामों का सुमिरन मन पर आवश्यंभावी रूप से प्रभाव डालता है। यह आत्मा को संसार और सांसरिक चीज़ें भुला कर ध्यान की ओर प्रशस्त करता है। ध्यानाभ्यास में केवल एकाग्रित सुमिरन रहता है, और हृदय (संत का हृदय कमल, जो मौहों के पीछे दैवीय–भूमि पर होता है) की गहन शान्ति से एक सतत् ध्वनि–धारा का निकास होता है, जो आत्मा का उत्थान करने मे सहायक होती है, जिससे (बिना चांदी की डोर को तोड़े) इसका शरीर से निकास सम्भव होता है, और फिर यह आत्मा को अग्रिम यात्रा पर विभिन्न आंतरिक मंडलों में ले जाती है। सत्गुरु का नूरी स्वरूप सदा आत्मा के साथ रहता है और उसकी हर क़दम पर मदद व मार्गदर्शन करता है। श्रुति का सिद्धान्त परमेश्वर और मनुष्य के बीच की कड़ी है, और इस प्रकार सृष्टिकर्ता व सृष्टि के मध्य कभी न समाप्त होने वाला सम्बन्ध और रिश्ता स्थापित हो जाता है। इस ध्वनि–धारा का अनेक मनीषियों ने अलग–अलग तरीक़े से वर्णन किया है। वेद इसे 'श्रुति' (जो सुनाई दे) कह कर पुकारते हैं। उपनिषद् इसे 'नाद' या 'उद्गीत' (अगली दुनिया का गीत) कहकर पुकराते हैं । मुस्लिम इसे 'बांग–ए–आसमानी'

अथवा 'कलमा' कहते हैं। गुरुबानी में इसे 'शब्द' कहा गया है, और सुसमाचारों में इस 'वर्ड' कहा गया है। ज़रुतुश्त इसे 'सरोशा' और फ्रॉंस के लोग इसे 'इलान वाइटल' ('Elan-vital') या जीवन–ऊर्जा कहते हैं।

एक बार जब चेतना इस श्रुति के सिद्धान्त या मूक की ध्वनि में अपनी जड़ें पसार दे, तो आत्मा का अनन्त जीवन आश्वस्त हो जाता है। इसके अलावा परमेश्वर तक पहुँचने का और कोई अन्य मार्ग नहीं है, और इसकी प्राप्ति केवल प्रभु के नामों के सुमिरन से ही सम्भव है।

खटकाओ, और यह (दरवाज़ा) आपके लिए खोल दिया जायेगा।
– पवित्र बाइबिल (मत्ती 7:7)

ये सुसमाचार का उपदेश है। एमर्सन इसे "अन्तर में खटखटाना" कहते हैं। ये खटखटाना और विच्छेदन केवल सुमिरन के द्वारा ही संभव है, जब मन शान्त होता है और आत्मा निकास कर प्रभु के अपने द्वार पर केन्द्रित होती है। अब, ये मार्ग वह है, जिसे स्वयं प्रभु द्वारा प्रस्थापित किया गया है, परन्तु बिना सत्गुरु, जो अध्यात्म–विज्ञान में निपुण है, की कृपा के बिना इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। याज्ञवल्क्य की भाँति सिद्धान्त में ही नहीं, परन्तु अष्टवक्र की भाँति साधन में भी– जो सभी (भौतिक, सूक्ष्म, कारण व कारण मंडलों) को पार करता हो और जिसे प्रभु की ओर से अन्य जीवों को उस तक ले जाने का परवाना मिला हो।

सुमिरन कैसे करें

सुमिरन के लिए हमें किसी सहज मुद्रा को अपनाना होता है और फिर हमें अपना ध्यान भौहों के मध्य, दिव्य–भूमि में टिकाना होता है। सुमिरन पूर्व रूप से एक मानसिक प्रक्रिया है और इसे विचारों की ज़बान से, अंतर्दृष्टि को भूमध्य स्थिर करके किया जाता है। सत्गुरु के दिये गए नामों को मन ही मन, ख़्यालों की ज़बान से बार–बार दोहराना होता है। इसे माथे पर बिना दबाव और ज़ोर डाले किया जाना चाहिए। इसका अभ्यास कम से कम आधे या जितनी सुविधा हो किया जा सकता है, लेकिन धीरे–धीरे, इस प्रक्रिया को घंटे तक या इससे भी अधिक समय तक बढ़ाना चाहिए।

दिव्य नामों का सुमिरन मन को अन्तर्मुखी करता है तथा सांसारिक और अन्य सामान्य विचारों से दूर रखता है, जब तक यह शांत होकर स्थिरता प्राप्त नहीं कर लेता।

कुछ लोग सुमिरन बन्द आँखों से करते हैं और कुछ लोग खुली आँखों से। पहली, कुछ परिस्थितियों में, उनींदी की अवस्था में डुबो देती है, और उसकी ओर ले जाती है, जिसे योग–निद्रा कहते हैं। और दूसरी में, कुछ दशाओं में, वातावरण में उलझाए रखती है। इसलिए दोनों स्थितियों में गिरावट से सावधान रहने की आवश्यकता होती है। बन्द आँखें से किया गया सुमिरन बेहतर है, बशर्ते उसमें पूर्ण रूप से चेतना बनी रहे। इसे रोज़ एक निश्चित समय पर करना चाहिए। फ़ारस के सूफी कवि, हाफ़िज़ कहते हैं :

हाफ़िज़ वजी़फ़ाए-तू दुआ गुफ़्तन अस्तो-बस

— दीवाने–हाफ़िज़ (पृ.129)

(हमारा काम केवल प्रार्थना करना है, बिना ये विचार किये कि इस प्रार्थना को स्वीकार किया जाता है या नहीं।)

इसका मतलब यह है कि बिना किसी वस्तु के प्राप्त करने की जकड़न की भावना से, अन्तरमन से प्रभु को याद किया जाना चाहिए। हमें सब कुछ उस शिरोधार्य प्रभु या गुरु पर पर छोड़ देना चाहिए। जिस प्रकार हमें शरीर के लिए भोजन की आवश्यकता है, वैसे ही आत्मा को भी भोजन चाहिए। हम घोड़े समान शरीर को भोजन देने में बड़ी सावधानी बरतते हैं, लेकिन सवार रूपी जीवनदायिनी स्त्रोत, जो शरीर को जीवन देता है और जिसके बिना इसकी कोई महत्ता नहीं है– आत्मा को भूखा रखते हैं। हमें आत्मा को नियमित रूप से और समय पर भोजन देना चाहिए, उससे अधिक सतर्कता से जितनी की हम शरीर के लिए करते हैं– चाहे हम कहीं भी हों– घर में या बाहर, चाहे कोई भी परिस्थिति हो। यह हमारा सबसे पहला और सर्वोच्च चिंता का विषय होना चाहिए।

नाम या शब्द का सुमिरन ही जीवन का अमृत है, और वास्तव में हमारे सारे कष्टों– शारीरिक, मानसिक, दुर्घटना रूपी या भाग्य रूपी– का निवारक है। यह आत्मा का भोजन है और जब आत्मा दृढ़ और बलशाली होती है, तो यह शरीर को भी जीवन व ज्योति की धाराओं ('Elan-vital')

से भर देती है, जिससे सिर से पैर तक अंधकार मिट जाता है। यही क्राइस्ट द्वारा बताई गई 'जीवन की रोटी' है, जब उन्होंने घोषणा की कि केवल रोटी पर ज़िन्दा नहीं रहा जा सकता, परन्तु मात्र प्रभु के नाम के सहारे ज़िन्दा रहा जा सकता है।

सुमिरन और ध्यान आत्मा को 'जीवन जल' से भर कर तृप्त कर देते हैं। आत्मा अपने मूल स्वरूप में आकर अपने सुप्त प्रभुत्व में जाग उठती है और एक उत्तेजित पर्वतीय धारा की तरह यह जीवन के महासागर, जो इसका शाश्वत स्रोत है, में तेज़ी से पदार्पण करती है और इसी में समा कर अपनी एकाकी पहचान समाप्त कर देती है।

सुमिरन के लिए स्थान या समय की कोई सीमा नहीं होती है। इसे कभी भी, किसी भी स्थान पर, बैठकर, खड़े होकर, चलकर, या बिस्तर में भी किया जा सकता है, परन्तु इसको जागरूक या चेतन अवस्था में ही किया जाना चाहिए। सुमिरन के लिए प्रातःकाल का समय (अमृत वेला) सबसे अच्छा है। एक हल्का–फुल्का और सुपाच्य रात्रि का भोजन, जिसमें दूध और फल हों, और सुबह के स्नानादि– ये सब सही दिशा में ले जाने में बड़े मददगार होते हैं। विचारों, शब्दों और कर्मों की शुद्धता साधना की सफलता का मार्ग प्रशस्त करती है क्योंकि आध्यात्मिक जीवन सदाचारी जीवन पर आधारित होता है, जिसका आधार वहीं होता है जहाँ आध्यात्मिक संरचना की जाती है।

एक गृहस्थ के लिए यह आवश्यक है कि वह जीवन का कड़े अनुशासन से निरीक्षण करे– चाहे खान–पान हो या वाणी से सम्बंधित मामलों में। पुनः सुमिरन धीरे–धीरे करना चाहिए और विचारों की ज़बान में स्पष्टता होनी चाहिए। यह सारी प्रक्रिया बड़े प्यार, समर्पण व एकाग्रचित्तता से की जानी चाहिए, ताकि परिणाम शीघ्र प्राप्त हो सकें। जब सुमिरन पर्याप्त समय तक विधिवत् रूप से किया जाता है, आत्मा पर एक दिव्य मदहोशी छा जाती है और एक आशीत स्थिरता का अनुभव होता है। सभी सांसारिक विचार हवा भी तरह लुप्त हो जाते हैं और आत्मा अपने को शरीर से प्रथक् महसूस करती है और सत्गुरु की अदृष्ट शक्ति से अप्रतिरोध्य रूप से ऊपर की ओर खिंचने लगती है। जब यह ऐन्द्रिक मंडलों से निकास करती है, यह अपने

केन्द्र में स्थिर हो जाती है, आंतरिक ज्योति आ जाती है, और एक–एक करके आध्यात्मिक अनुभव– जैसे कि तारों से जड़ा आकाश, चंद्रमा, सूर्य– प्रकट होने लगते हैं। बहुधा सभी वेदों, उपनिषदों, पवित्र कुरान, गुरुवाणी, सुसमाचारों आदि धर्मग्रन्थों में– चाहे वे प्राचीन हो या आधुनिक– इन चीज़ों का वर्णन मिलता है। पैग़म्बर मोहम्मद और मूसा अनेक आन्तरिक रोशनियों का वर्णन करते हैं। बाइबिल में कई संदर्भ गर्जन व बिजली के बारे में आते हैं, जब प्रभु की आवाज़ पैग़म्बरों से वार्तालाप करती है।

जब आत्मा उस प्रारम्भिक अवस्था पार कर सूक्ष्म मंडल में प्रवेश करती है, वहाँ उसे सत्गुरु के नूरी स्वरूप के दर्शन होते हैं, जो आत्मा को अपने वश में ले लेता है और उसे मंडल–दर–मंडल अग्रिम आध्यात्मिक यात्रा कराता है। सत्गुरु के प्रादुर्भाव से सुमिरन का काम पूरा हो जाता है और आत्मा पूर्व रूप से सत्गुरु के हाथों में होती है।

सिक्खों के पाँचवे गुरु, अर्जन देव जी ने इस परिणाम का एक शानदार वर्णन दिया है, जिसकी प्राप्ति प्रभु के मधुर सुमिरन के द्वारा होती है। वे हमें पुरातन संतों के दिए शब्दों से प्रभु को हर पल याद करने के लिए प्रभावित करते हैं। उस एक सत्य के हज़ारों नाम हैं, लेकिन हम सबका निशाना और लक्ष्य एक ही है। हमें नाम से शुरूआत करनी चाहिए और उससे नामी से सम्पर्क बनाना है। जब तक आपका सम्पर्क नामी से नहीं होता, तब तक नामों के उच्चारण का पूर्ण लाभ नहीं मिल सकता। उदाहरण के लिए, पानी को अंग्रेज़ी में 'वॉटर', लॅटिन में 'अक्वा', उर्दू व फ़ारसी में 'पानी' या 'आब' और हिन्दी में 'जल' या 'नीर' कहते हैं, लेकिन इनके बार–बार उच्चारण से ही आपकी प्यास नहीं बुझ सकती। प्यास तभी बुझती है, जब वह पेय, जिसे अनेकों नामों से पुकारा गया है, पिया जाता है। संसार और सांसारिक वातावरणों का सुमिरन करते रहने से इन्होंने हमें पूर्ण रूप से इतना घेर लिया है कि हम भी सांसारिक और सांसारिक वातावरणों के रह गए हैं। हमें यही तरीक़ा प्रयोग करना है, प्रभु की प्रेमपूर्वक याद करके, जिससे हम अपने अन्दर सांसारिक विचारों का नाश कर सकें। इस प्रकार, सुमिरन के दो प्रमुख उपयोग हैं। पहला, उन अभिसक्त नामों का सुमिरन करके, जो समर्थ सत्गुरु द्वारा दिया गया हो, आत्मा का शरीर से ऊपर उठना, और

दूसरा, प्रभु की निरन्तर याद द्वारा, संसार व सांसारिक विचारों को, बताये गए साधनों के माध्यम से, जिनका उपरोक्त विस्तृत रूप से वर्णन दिया गया है, निकाल फेंकना है।

सुमिरन के लाभ

सुमिरन के, ध्यान सहित, अनेक लाभों में से कुछ इस प्रकार हैं :

1. इससे सत्गुरु के प्रति इतना प्रेम उपजता है, जितना मानव की पहुँच के भीतर किसी अन्य साधन द्वारा हृदय में संजोये रखना, पोषित करना तथा विकसित करना संभव नहीं है।

2. इससे 'ध्यान' की मदद करने में सबसे सहज प्रवेश मिलता है। इससे इच्छा–शक्ति को बल मिलता है। पाँच नामों के साथ–साथ गुरु द्वारा प्रदत्त ख़्याली–स्थानांतरण जादुई रूप से कार्य करता है।

3. इससे सुरत अंतर में खटखटाने (अर्थात भौतिक शरीर में से लौटने में) और उच्चतर मंडलों को पार करने के योग्य बनती है, जबकि अन्य नामों का सुमिरन मात्र आँखों के पीछे (अर्थात पिंड की चोटी) तक ध्यानस्त होने में सक्षम है। यदि संत या साधु की गति के सत्गुरु के अलावा, जो कि किसी उच्चतर मंडल तक पहुँच रखता हो, किसी नाम या नामों को प्रदान करता है, तो उस गति तक पहुँचा जा सकता है, परन्तु उसके ऊपरी आध्यात्मिक मंडलों तक नहीं। इस प्रकार, क्रियाशील तथा समर्थ सत्गुरु या शब्द–गुरु का दिया पाँच नामों का सुमिरन सभी मंडलों में प्रवेश हेतु 'पारपत्र' की तरह काम करता है।

4. फिर, भौतिक शरीर से निकास के पश्चात, जब देवी–देवता, अन्य भयंकर आकृतियाँ हमें अंतर में बहकाने या मार्ग रोकने के लिए उपस्थित हो जाते हैं, या स्वयं काल हमें सत्गुरु के स्वरूप में हमें छलने या रोकने का प्रयत्न करता है, तो पाँच नामों के सुमिरन से वे सभी बेनक़ाब हो जाते हैं और उन्हें राह से भगा दिया जाता है। सिर्फ़ एक ऐसे सत्गुरु जो पाँचों मंडलों तक रसाई रखते हों या उनके अनुयायी ही अभिसक्त नामों के सुमिरन के समक्ष टिक सकते हैं। इस प्रकार, यह अंतर की यात्रा के दौरान हमारी रक्षा करके हमारी मदद करता है।

सुमिरन पर कबीर साहिब के विचार

मैंने सुमिरन के संदर्भ में विषय का सम्पूर्ण निचोड़ पेश कर दिया है। इस विषय पर अनेक संतों के विचार रखना अनुपयुक्त नहीं होगा। अब मैं आपके समक्ष इस विषय पर कबीर साहब के कुछ वचन रखता हूँ। वे कहते हैं :

सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दुख जाय।
कह कबीर सुमिरन किये, साईं माहिं समाय।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 1, पृ.88)

आगे, वे कहते हैं :

राजा राना राव रंक, बड़ा जो सुमिरै नाम।
कहि कबीर बड़ों बड़ा, जो सुमिरै निःकाम।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 2, पृ.87)

न धन, न ताक़त किसी व्यक्ति को बनाते हैं। ग़रीबी और अमीरी दोनो आनी–जानी हैं। लेकिन सुमिरन करने वाले का स्थान समस्त मानवता से ऊपर होता है। अन्यों के मुक़ाबले उसको प्रभु का अधिक आशीर्वाद प्राप्त होता है। अधिकतर लोग केवल सांसारिक चीज़ों की कामना करते हैं। कोई बच्चों की कामना करता है, तो कोई धन के पीछे भागता है, और अन्य लोग नाम और शोहरत के पीछे भागते हैं। दयालु पिता परमात्मा, वास्तव में, सबकी प्रार्थना स्वीकारता है। लेकिन, दूसरी ओर, सुमिरन करने वाला व्यक्ति किसी भी चीज़ की कामना नहीं करता– वह सिर्फ़ प्रभु को प्रभु के लिए ही मांगता है और इसलिए वह मानवता का शिरोमणि है।

एक बार महान मुग़ल शासक, अकबर, जब घोड़े की सवारी कर रहा था, अपना रास्ता भटक गया और प्यास से व्याकुल होने लगा। उसने एक किसान से, जो कि कुएँ के पास खड़ा था, पानी माँगा। किसान ने सम्राट का घोड़ा निकट के पेड़ से बाँध दिया और उसे भोजन और पानी दिया, बिना जाने कि वह कौन है। सम्राट उसकी आतिथ्य से बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने एसे बता दिया कि वह कौन है और उसे अपने पास आने का न्यौता दिया, यदि उसे कभी कोई ज़रूरत हो। कुछ समय के बाद, उसे शहर में जाने का मौक़ा मिला। वह सम्राट से मिलने गया, जैसा कि उससे कहा

गया था। उसके शानदार महल में जाने पर उसने देखा कि सम्राट प्रभु से प्रार्थना करने में व्यस्त है, और प्रार्थना के अंत में उसने प्रभु से प्रार्थना की कि उसके राज्य में शांति और समृद्धि बनी रहे। यह देखकर किसान बड़ा शर्मिन्दा और अपमानित हुआ कि वह एक भिखारी से भीख मांगने आया है, क्योंकि वह भी महान प्रभु से, जो अमीर और ग़रीब– दोनों की समान रूप से सुनता है, स्वयं के लिए सीधे प्रार्थना कर सकता था।

गुरु नानक ने कहा है :

जउ मागहि तउ मागहि बीआ।। जा ते कुसल न काहू थीआ।।
मागनि माग त इकहि माग।। नानक जा ते परहि पराग।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी छंत म०5, पृ०258)

हम सांसारिक चीज़ों के लिए प्रभु से क्यों मांगें?

जो लोग शरीर और शारीरिक सम्बंधों से प्रेम करते हैं, वो नर्क का रास्ता तैयार करते हैं। लेकिन जो व्यक्ति उद्देश्यरहित रूप से सुमिरन करता है, वह सचमुच महान होता है। हम आमतौर पर अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए ही प्रार्थना करते हैं। जहाँ तक एक आदमी और औरत इनसे भरपूर है, मानव शरीर हरिमन्दिर बनने के बजाय शैतान का घर बन जाता है। इसलिए कबीर साहिब कहते हैं कि प्रभु उनसे प्यार करता है, जो प्रभु से ही प्यार करते हैं, प्रभु से प्यार करने के लिए, और किसी अन्य उद्देश्य के लिए नहीं। बिल्कुल ऐसा ही सिक्ख ग्रंथ में कहा गया है :

किआ मागउ किछु थिरु न रहाई।।
देखत नैन चलिए जगु जाई।।

– आदि ग्रंथ (आसा कबीर म०1, पृ०481)

मैं किसके लिए माँगू? संसार में कुछ भी शाश्वत नहीं है। मै सम्पूर्ण संसार को अपने सामने से गुज़रते हुए देखता हूँ। कबीर साहिब कहते हैं :

दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 4, पृ.87)

हम प्रभु को तभी याद करते हैं, जब हम जीवन की तमाम कठिनाइयों से गुज़र रहे होते हैं। ये विपत्ति है, न कि बहुतायत, जो हमें प्रभु की ओर

मोड़ती है। यदि सुख–समृद्धि में ईश्वर को नहीं भूला जाय, तो दुख–विपत्ति हमारे नज़दीक कभी नहीं आये। कठिन समय केवल हमारे पापों के परिणाम की वजह से आता है, जब हम ईश्वर को भूल जाते हैं। सुमिरन (प्रभु की निरन्तर याद) आत्मा का पुष्टिकारक (tonic) है। इससे हमारी इच्छा–शक्ति दिनों–दिन मज़बूत होती है। परेशानियाँ और परीक्षाएँ चाहे कितनी भी भंयकर हों, उसे डिगा नहीं सकतीं। अपने मुस्कराता चेहरा लिए, वह अपने भाग्य या प्रारब्ध के तूफ़ानों में सही–सलामत निकल जाता है। सुमिरन संसार की सभी बिमारियों की अचूक दवा है। यह एक शक्तिशाली उपचार है और बड़े आश्चर्यजनक तरीक़े से मनुष्य के जीवन आने वाली परेशानियाँ समाप्त करता है, तब सभी मानवीय प्रयास विफल हो जाते हैं। सुमिरन करने वाले कभी चिन्ता व परेशानी से ग्रस्त नहीं होते।

प्रभावशाली होने के लिए सुमिरन लगातार और रुके बिना चलना चाहिए। एक बार इब्रानियों के पैग़म्बर, मूसा ने महसूस किया कि वे प्रभु के बन्दों में से सबसे बड़े भक्त हैं। उन्होंने अहंकारबद्ध मन से प्रभु से पूछा कि क्या संसार में उनसे भी अधिक समर्पित भक्त कोई है। उस महान ईश्वर ने मूसा को बताया कि उसके भक्तों में मनुष्यों के अलावा पशु एवं पक्षी भी शामिल हैं। जंगल में एक चिड़िया की ओर इशारा करते हुए, ईश्वर ने मूसा को कि उस चिड़िया से मिलने के लिए निदेर्शित किया। क्योंकि मूसा चिड़ियों की बोली नहीं जानते थे, ईश्वर ने उन्हें उस चिड़िया से बोलने की समझ प्रदान कर दी। मूसा चिड़िया के पास पहुँचे और पूछा कि वह कैसी है। चिड़िया बोली कि क्योंकि वह लगातार प्रभु में सुमिरन में व्यस्त था, उसके पास फ़ालतू बातों में समय बर्बाद करके के लिए समय नहीं है। किन्तु यदि उसे प्रियतम, जिसने उसे यहाँ भेजा है, की कोई बात करनी हो, तो दूसरी बात है। फिर पैग़म्बर ने चिड़िया से पूछा कि क्या तुम्हें कोई पेरशानी है, जिसका समाधान मैं करा सकूँ। चिड़िया ने कहा कि मुझे कोई कष्ट नहीं है, लेकिन यदि पैग़म्बर उसपर कोई उपकार करना चाहता है, तो वह उसे कुछ दूरी पर पानी का जो स्रोत है, उसे उसके निकट ले जाये, क्योंकि प्यास बुझाने के लिए वहाँ तक उड़ान भरने में उसके सुमिरन में दख़ल पैदा हो जाता है। इस घटना ने मूसा के अहम् को नीचा कर दिया।

गुरु नानक भी इसी प्रकार कहते हैं :

हरि जीउ तुधु नो सहा सालाही पिआरे जिचरु अंतरि है सासा।।
इकु पलु खिनु विसरहि तू सुआमी जाणउ बरस पचासा।।

– आदि ग्रंथ (सोरठि म०3, पृ०601)

वे फिर कहते हैं :

सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ।।
नानक अवरु न जीवै कोइ।।

– आदि ग्रंथ (माझ वार तथा सलोक म०1, पृ०141)

सिर्फ़ वही जीवित है जो निरन्तर प्रभु की याद में रहता है, बाक़ी सभी मरे हुए हैं।

सुमिरन हर हालत में किया जाना चाहिए। प्रभु की याद भक्त के लिए जीवन–दायिनी है। गुरु नानक कहते हैं :

जे तुधु वलि रहै ता कोई किहु आखउ तुधु विसारिऐ मरि जाई।।

– आदि ग्रंथ (सूही असटपदीआ म०4, पृ०757)

हे प्रभु, यदि जब मैं तुझे याद करता हूँ, मै जीता हूँ। पर जब मै तुझे भूल जाता हूँ, तो वो मेरे लिए मृत्यु समान होता है।

ध्यान को विकसित करने के अनेक तरीक़े हैं। कुछ लोग कई घंटों खड़े रहते हैं, कुछ अपनी बाहों को ऊपर उठाये रहते हैं, तो कुछ प्राणायाम करके, साँस को नियंत्रित करते हैं, और कुछ कीलों की शय्या पर सोते हैं, और कुछ चारों तरफ आग जला कर तपते हुए सूरज में बैठकर "पंचाग्नि तप" करते हैं। परन्तु ये सभी तरीक़े बनावटी हैं। सुमिरन या प्रभु की याद एकमात्र प्राकृतिक तरीक़ा है, जो आसानी से अपनाया और विकसित किया जा सकता है। इसका अभ्यास बराबर आसानी से जवान और बूढ़े अपने घर में और बच्चों– सम्बधियों के मघ्य या व्यापार करते हुए भी किया जा सकता है।

आगे कबीर कहते हैं :

सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुनै फरियाद।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 5, पृ.87)

क्योंकि हम प्रभु को याद केवल अपने मुसीबतों की परिस्थिति में करते हैं, और बाक़ी समय उसकी कोई परवाह नहीं करते, संत कबीर कहते हैं कि प्रभु भी ऐसी स्वार्थ भरी प्रार्थनाओं को नहीं सुनते, जो बीमारी से दुख भोगते समय या मुकद्दमे में भाग लेते समय व्यर्थ की जाती हैं।

प्रार्थना अनवरत, और प्रेम की गहन उमंगों से ओत–प्रोत होनी चाहिएँ, उसके प्रेम को एक पलक झपकते क्षण भी नहीं भूल कर। जब एक मनुष्य किसी स्त्री से प्रेम करता है, वह उसकी छवि हमेशा अपने मन में रखता है– चाहे सोते हुए, जागते हुए, बैठे हुए या खड़े हुए। यदि कोई अपने साथ इस प्रकार का प्रेम ले जाये, तो यह सचमुच शानदार होगा।

आगे, कबीर प्रभु की याद को कैसे करना चाहिए, इसकी व्याख्या करते हैं। वह इस प्रकार का एक अन्य उदाहरण देते हैं। वे कहते हैं :

सुमिरन की सुधि यों करौ, ज्यों गागर पनिहार।
हालै डोलै सुरति में, कहै कबीर बिचार।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 7, पृ.88)

दिनचर्या सुमिरन में दख़लअन्दाज़ी नहीं करती। गांवों की महिलाएँ, जब वे पानी भरने जाती हैं, उनके सिर पर एक के ऊपर एक के ऊपर एक पानी के घड़े रखे हुए होते हैं। पर अनजान राह पर, वे हँसते–बात करते आपस में चल जाती हैं, जबकि घड़े उनके सिर के ऊपर स्थिर रहते हैं, क्योंकि उनका ध्यान सदा उन पर दृढ़ रहता है। इसी प्रकार, तमाम जीवन के धक्कमपेल और सांसारिक कामों के बावजूद, हमें सुमिरन भूलने की ज़रूरत नहीं है।

कबीर फिर से कहते हैं :

सुमिरन की सुधि यों करौ, ज्यों सुरभी सुत माहिं।
कह कबीर चारा चरत, बिसरत कबहूँ नाहिं।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 8, पृ.88)

प्रार्थना को चरवाहे की जानवरों की तरह करना चाहिए, जो अपने घर में छोड़े गए बछड़ों को चरते समय भी नहीं भूलते। उनका ध्यान चारागाह में चरते समय भी अपने बछड़ों पर ही रहता है। इसी प्रकार, दुनियावी

कार्यों में व्यस्त रहने के बावजूद, हमें अपने जीवन का लक्ष्य– आत्म–ज्ञान व प्रभु–प्रप्ति, नहीं भूलना चाहिए।

कबीर एक अन्य उदाहरण देते हैं यह स्पष्ट करने के लिए कि हमें प्रभु को याद करना चाहिए :

सुमिरन की सुध यूँ करौ, जैसे दाम कंगाल।
कहे कबीर बिसरै नही, पल पल लेहि संभाल।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 9, पृ.88)

एक भिखारी अपना धन भीख मांग कर इकट्ठा करता है और उसे दिन–रात गिनता रहता है। सोते–जागते, सारे समय, वह अपने नन्हे ख़ज़ाने के स्वप्न देखता रहता है। हमें भी, भिखारी की तरह, अपने किए गए सुमिरन का हिसाब रखना चाहिए और, धीरे–धीरे 'नाम' की दौलत को अर्जित करना चाहिए, उसे एक घड़ी के लिए भी भूले बिना।

कबीर ने अनेक उदाहरण दिये है, जिनसे हमें अत्यंत फलदायी सुमिरन के वास्तविक मूल्य का अंदाज़ा हो सके।

सुमिरन से मन लाइये, जैसे नाद कुरंग।
कहे कबीर बिसरै नहीं, प्रान तजै तेहि संग।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 10, पृ.88)

प्रार्थना ऐसे करे जैसे हिरन तुम्हारी आवाज पर नेत्र मुग्ध होता है। जो शब्द मधुर संगीत भी खातिर अपने जीवन को भी दाव पर लगाता है।

द्रुतगामी पैरों वाला हिरन, जो कि आसानी से नहीं पकड़ा जा सकता, वह शिकारी द्वारा किए गए तूर्यनाद सुनकर उसकी पकड़ में आ जाता है। वह इस आवाज़ से इतना मंत्र–मुग्ध हो जाता है कि वह असहाय होकर उस संगीत–वाद्य के मुख पर रख देता है। इसी प्रकार, जब सदैव विचलित रहने वाला मन नाद (अंतर्मुख ध्वनि–धारा) को सुनता है, वह मोहित होकर शांत और गति रहित हो जाता है। मन के जंजालों से स्वतन्त्र होकर आत्मा ऊपरी मंडलों में उड़ान कर पाती है।

वे एक और उदाहरण देते हैं :

सुमिरन से मन लाइये, जैसे दीप पतंग।
प्रान तजै छिन एक में, जरत न मोड़ै अंग।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 11, पृ.88)

रोशनी ही पतंगे का जीवन होता है। वह इसको इतनी उमंग से प्यार करता है कि इस रोशनी से दूर जाने के बजाय, अपने आप को जला डालने पर भी वह तनिक नहीं झिझकता है। कबीर साहब इसलिए कहते हैं कि हमें सुमिरन से प्रेम करना चाहिए, जैसे कि यह हमारी साँस हो— चाहे हमारी कोई भी दशा हो— अमीरी या ग़रीबी, स्वस्थ या बीमार, जागृत या सुप्त अवस्था। हमें पतंगे की तरह ही अपने आदर्श की आराधना के लिए बलिदान करने के लिए हर दम तैयार रहना चाहिए।

वे पुनः कहते हैं :

सुमिरन से मन लाइये, जैसे कीट भिरंग।
कबीर बिसरै आप को, होय जाय तेहि रंग।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 12, पृ.88)

भृंगी (भंवरा), जो एक कीड़ा है, वह एक दूसरे कीड़े, कीट को लगभग मारने के पश्चात्, उसे पुनः जीवनदान देने में अपना सम्पूर्ण ध्यान लगा देता है। और जब वह कीट जीवन प्राप्त कर लेता है, तो वह अब कीट नहीं, एक भृंगी ही बन जाता है क्योंकि उसे एक भृंगी की जीवन–धारा प्राप्त हुई है। बिल्कुल ऐसे ही कबीर दास जी कहते हैं, कि जो कोई सुमिरन करता है और उसमें पूर्णतयाः समा जाता है, उसे एक दूसरा जन्म मिल जाता है, जो उसके ऐन्द्रिक, सांसारिकता से लिप्त पुराने जीवन से बिल्कुल अलग होता है।

ये वह 'द्विजन्म' होता है, जिसके बारे में सभी संत बात करते हैं। क्राइस्ट कहते हैं :

जो कोई इस जीवन को मेरे लिए खोएगा, वही इसे बचा लेगा।

— पवित्र बाइबिल (लूका 9:24)

जब तक तुम इस जीवन को त्यागते नहीं, तब तक तुम अनन्त जीवन को प्राप्त नहीं कर सकते।

> बिना पानी के जन्मे (पहला जन्म) और आत्मा के जन्मे (दूसरा जन्म), कोई व्यक्ति प्रभु के साम्राज्य में प्रवेश नहीं कर सकता।
>
> – पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 3:5)

> सदा जीवित और अस्तित्व में रहने वाले प्रभु के 'शब्द' द्वारा शाश्वत बीज से पुनर्जन्म मिलता है, न कि भृष्ट बीज से।
>
> – पवित्र बाइबिल (1 पतरस 1:23)

पहला जन्म भ्रष्ट बीज से मिला था, तो दूसरा जन्म शाश्वत बीज से मिलेगा। इसे "क्राइस्ट में जन्म मिलना" कहा जा सकता है, और जब ये वास्तव में होता है, तो सेन्ट पॉल के साथ कहना होगा :

> ये मैं नहीं हूँ, बल्कि मसीह (क्राइस्ट), जो मेरे अन्दर जीते हैं।
>
> – पवित्र बाइबिल (गलसातियों 2:20)

कलम द्वारा दिए गए जीवन का सिद्धान्त जैसा पौधों में कार्य करता है, वैसे ही मनुष्य में भी, और यह प्रकृति के नियमों के अनुसार होता है।

हज़रत बाज़िद बुस्तामी ने, जो एक अति दयावान और भक्ति से ओत–प्रोत व्यक्ति थे, एक दिन अपने अन्दर झाँका, जो प्रभु के सिवा कुछ और न पाया। तो मदमस्ती की दशा में वे चिल्ला उठे, "मैं ही ख़ुदा हूँ, मैं ही ख़ुदा हूँ" :

> **मन ख़ुदाएम मन ख़ुदाएम मन ख़ुदा,**
> **फ़ारग़म अज़ किब्रो कीना व ज़े हवा।**

उनके शिष्य, जो इतने धर्मभ्रष्ट शब्दों के सुनने के आदी नहीं थे, आश्चर्यचकित रह गए कि उनके पीर को यह क्या हो गया। कुछ समय बाद, जब वे अपनी परा–चेतन अवस्था से उतर कर आये, तो उनके शिष्यों ने उनसे पूछा कि उन्होंने ऐसा क्यों कहा कि वे प्रभु हैं, जोकि उनकी ही दी गई शिक्षाओं कि बिल्कुल विपरीत था (कि परमात्मा इन्सानी चोले में नहीं आ सकता)। पीर ने उन्हें बताया कि ये वाक्य मेरे द्वारा नहीं, किन्तु किसी और के द्वारा बोला गया था (कुरान के न्याय के अनुसार उन्हें इन धर्मभ्रष्ट शब्दों का उच्चारण करने के लिए काफ़िर घोषित किया जा सकता था)। कुछ समय बाद, फिर से इन हज़रत को प्रभु की मस्ती के नशे का दौरा पड़ गया और वे चिल्लाने लगे, "मैं ख़ुदा हूँ।"

मन ख़ुदाएम मन ख़ुदाएम मन ख़ुदा,
फ़ारग़म अज़् किब्रो कीना व ज़े हवा।

इस बार उनके कुछ शिष्य यह सुनकर डंडे, भाले, तलवार लेकर अपने पीर पर टूट पड़े। मौलाना द्वारा रचित 'मसनवी' में कहा गया है कि जो कोई पीर के सिर, हाथों या पैरों की ओर प्रहार करता, ख़ुद उसका वह अंग कट जाता, जबकि पीर मस्ती में ख़ुद जपते रहे, "मैं ख़ुदा हूँ।"

मन ख़ुदाएम मन ख़ुदाएम मन ख़ुदा,
फ़ारग़म अज़् किब्रो कीना व ज़े हवा।

— कुल्लीयाते–फरीदुद्दीन अत्तार (पृ.1225)

सभी शिष्य आश्चर्यचकित हो गए, और उन्होने अपने पीर से इस घटना की महत्ता के बारे में जब पूछा, तो अपने चेहरे पर मुस्कुराहट लिए, पीर ने कहा, जो अपने लघु व्यक्तित्व (आत्मा) को विशाल व्यक्तित्व (प्रभु) में लीन कर देता है, वह प्रभु से एकमेक हो जाता है और कोई भी उसको क्षति नहीं पहुँचा सकता।

इसी प्रकार, 'घट–रामायण' में आता है कि हाथरस के तुलसी साहब, जो कि बड़ी भक्ति वाले व्यक्ति थे, जब वे सतारा के पेशवा, बाजी राव होलकर के साथ रह रहे थे, ने कहा कि जब लोग मेरे शरीर को देखते हैं, मैं वास्तव में शरीर के बाहर ही रहता हूँ।

हमारे अपने सत्गुरु, हुजूर बाबा सावनसिंहजी महाराज एक बार पंजाब के गूजराँवाला शहर की यात्रा कर रहे थे, तब कुछ विरोधी लोग एक विचार की लड़ाई लड़ने की मन्शा से आये। सत्गुरु अन्दर थे, वे उठ खड़े हुए। उस समय वे प्रभु के नशे में चूर थे। उन्होंने कहा, "मेरी ओर देखो! मैं कौन हूँ?" और वहाँ पूरी शांति छा गई।

यह एक आम अनुभव है, उन लोगों का, जो कभी–कभी प्रभु के नशे में चूर हो जाते है। ऐसे वाक्यों से सुमिरन का सही अर्थ विदित होता है।

कबीर साहिब अनेक उदाहरण देते हैं। वे कहते हैं :

सुमिरन से मन लाइये, जैसे पानी मीन।
प्रान तजै पल बीछुरे, सत कबीर कहि दीन।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 13, पृ.88)

मछली के लिए जल एक अनिवार्यिक तत्व है, जिसके बिना वह जीवित नहीं रह सकती। पानी के बिना मछली मरना पसन्द करती है, बजाय इसके बिना एक क्षण भी जीने के। इसी प्रकार, सुमिरन (शब्द–धारा) भी वह तत्व है, जिसमें हम जीते हैं, विचरते हैं और जिसमें हमारा अस्तित्व है। जब तक हम वास्तविक अभ्यास द्वारा इस आधारभूत सत्य को नहीं प्राप्त करते, तब तक हमें सच्ची शाक्ति नहीं मिल सकती।

अब वे आगे व्याख्या करते हैं :

हृदय सुमिरनी नाम की, मेरा मन मसगूल।
छबि लागे निरखत रहौं, मिटि गया संसय सूल।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 59, पृ.92)

सुमिरन को विचारों की ज़बान से किया जाना चाहिए, न कि मुख से बोलकर। पूर्ण रूप से यह एक आन्तारिक मानसिक प्रक्रिया है और इसका अभ्यास तभी किया जाना चाहिए, जब बाहिर्मुखी इन्द्रियों के दरवाज़े बन्द कर दिए गए हों।

सुमिरन के खज़ाने को संसारी लोगों से छिपा कर रखना चाहिए– यह एक बहूमूल्य दौलत है, जिसकी क़ीमत दुनियावी लोग प्रायः समझ नहीं सकते।

वास्तविकता तभी सामने आती है, जब आँखें के पीछे लगा हुआ परदा फाड़ दिया जाता है। क्राइस्ट भी इस बारे में कहते हैं :

खोजो, और तुम्हें प्राप्त होगा। खटकाओ, और यह तुम्हारे लिए खोल दिया जाएगा।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 7:7)

बाहरी प्रक्रिया को इंगित करते हुए, जो हम सुमिरन में करते हैं, कबीर कहते हैं कि,

माला फेरत मन खुसी, ता तें कछू न होय।
मन माला के फेरते, घट उँजियारी होय।।

माला के मोती फिरा कर हम केवल अपने मन को ख़ुश कर लेते हैं, पर इससे हमें कुछ प्राप्ति नहीं होती। लेकिन यदि अपने मन के मोती फिराने से प्रभु की ज्योति के दर्शन होते हैं।

कबीर साहिब कहते हैं कि मोतियों की माला फेरनी की कोई ख़ास आवश्यकता नहीं है क्योंकि जब माला फेरने में हमारे हाथ व्यस्त होते हैं, हमारा मन बाहरी दुनिया के मोती खिसकाने में लगा रहता है और अंतर्मुख नहीं हो पाता। इस कारण से इसका कोई लाभ नहीं प्राप्त होता। इसके विपरीत, एक बार जब मन सुमिरन (मानसिक ध्यान) में लग जाता है, तो (जादूई शब्दों के उच्चारण से) वज्र किवाड़ झट खुल जाता है।

कबीर कहते हैं :

माला फेरत जुग गया, फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मन का फेर।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 16, पृ.88)

इसलिए वे फ़रमाते हैं कि हम अपना सारा जीवन बाहरी कर्मकांडों में लगा देते हैं, परन्तु आत्मा की उत्थान नहीं हो पाता। पर्दाफ़ाश नहीं होता, और आत्मा बाहिर्मुखी रह जाती है। इसलिए हमें अपने मन के मनकों को प्रभु की ओर मोड़ना चाहिए, जिससे यह एक दबाने वाले खटके की तरह काम करेगा, जिससे आत्मा के लिए आंतरिक आध्यात्मिक क्षेत्रों का मार्ग प्रशस्त होगा।

कबीर दास जी फिर कहते हैं :

प्रभ कै सिमरनि अनहद झुनकार।।
प्रभ कै सिमरनि निहचल आसनु।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म०5, पृ०263)

ध्यानस्त होने से, बाहों और पैरों में धीरे–धीरे एक सुन्नता फैलने लगती है, जो फिर बाक़ी सारे शरीर में फैल जाती है, जब तक आत्मिक धाराएँ भ्रूमध्य आत्मिक केन्द्र पर संकेन्द्रित न हा जायें (जहाँ से, जागृत अवस्था में यह प्रस्थान करती है)। संकेन्द्रित शक्ति फिर आँखों के पीछे के पर्दे पर पड़कर उसे फाड़ फेंकती है, जिससे एक प्रदीप्त परिदृष्य जागृत हो उठता है। आंतरिक सूर्य व चन्द्रमा, धुर से एक सुमधुर ध्वनि–धारा के बीच प्रकट हो जाते हैं। जब यह अवस्था प्राप्त हो जाती है, जिज्ञासु के लिए कुछ और करने के लिए नहीं रह जाता, सिवाय उसमें समा जाने के।

कबीर फिर यह फ़रमाते हुए आगे बढ़ते हैं :

कबीर माला मनहिं की, और संसारी भेख।
माला फेरे हरि मिलैं, तो गले रहट के देख॥

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 18, पृ.89)

प्रभावी होने के लिए सुमिरन प्रेम, स्नेह और भक्ति भरा होना चाहिए। यदि सुमिरनी मात्र प्रभु तक पहुँचा देती, तो पर रहट का पहिया (Persian Wheel) भी इसी कार्य को कर सकता है। परन्तु हमारा दैनिक अनुभव यह दिखाता है कि वे इस प्रकार की किसी भी चीज़ को प्राप्त करने में असफल ही रहते हैं क्योंकि इसकी डोंरियों से लटके मर्तबानों से केवल पानी ही निकाला जा सकता है, अन्य कुछ और नहीं।

बिल्कुल ऐसे ही चीन के लोग ने 'प्रार्थना चक्र' को ईजाद दिया है। एक बार यदि यह चक्र गति में आ जाए, तो ये एक बार में हजारों चक्र काट लेता है। वे एक मंत्र या पवित्र स्तोत्र को एक कागज़ के टुकड़े पर लिख कर, उसे पहिए में रख कर चला देते हैं, और इससे सन्तुष्टि कर लेते हैं कि उन्होंने इस पवित्र नाम को हज़ारों बार दोहरा लिया, परन्तु बिना किसी लाभ के। हज़ारों बार रट कर, तोते की तरह किया गया सुमिरन फलदायी नहीं होता।

रूढ़िवादी हिन्दुओं में 'राम, राम' या कोई प्रभु का नाम हज़ारों बार लिखने की पद्धति है। वे 'राम' के हर अक्षर को कैंची से काट कर उसे चक्की में आटे की तरह पीसते उसकी गोलियाँ बनाकर उसे किसी बहती धारा में बहा देते हैं और यह विश्वास कर लकते हैं कि उन्होंने पुण्य प्राप्त कर लिया है। इस कृत्य से राम की मात्र थोड़ी सी याद मिल सकती है। यदि कोई उनको वास्तव में राम उनके अन्दर विराजमान हैं, तो वे इसका विश्वास नहीं करेंगे। इसलिए न तो वे राम को प्राप्त कर पाते है और न ही उन्हें कोई ठोस चीज़ प्राप्त होती है।

इसी तरह पूरबिया (एक रूढ़िवादी पन्थ, जो कि बाहरी प्रथाओं और रिवाज़ों से जुड़े हुए है और उन्हें बड़ी धार्मिक श्रद्धा से क्रियान्वित करते हैं) लोग प्रायः जल्द सुबह पानी की बहती धारा में स्नान करते हैं, एक धार्मिक रिवाज़ की तरह। हल्के–फुल्के मज़ाक में– एक बार कुछ पूरबिया लोग अफ़गानिस्तान में काबुल गए, जहाँ का मौसम ज़्यादातर ठंडा रहता

है। यहाँ पर उनमें से एक काबुल नदी में नहाने गया, पर पानी को बर्फ़नुमा ठंडा पाकर, वह पानी में जाने से झिझकने लगा। जब उसने एक अच्छा तरीक़ा अपनी इस अग्निपरीक्षा से बचने का ढूंढ निकाला, जिससे उसके विश्वास को भी ठेस न पहुँचे। उसने पत्थर लिया और उसे बहते पानी में फेंक दिया, यह कहकर कि, "हे पत्थर! तुम्हारा स्नान ही मेरा स्नान भी है।" यह कहकर वह लौट गया और रास्ते में उसे एक दूसरा पूरबिया मिला, जो ख़ुद प्रातःकालीन स्नान के लिए जा रहा था। जाने वाले ने उससे पूछा कि क्या उसने इतने ठंडे और दुशवार मौसम में स्नान किया। लौटकर आने वाले ने पत्थर के प्रतिनिधित्विक स्नान के बारे में उसे बता दिया, जिसपर दूसरे ने उसको गले लगा कर कहा, "तुम्हारा स्नान मेरा भी।" इस प्रकार जब अन्धा अन्धे को रास्ता दिखाता है, दोनों ही अंधकारमयी कृत्य करने से खाई में गिर पड़ते हैं।

कबीर साहिब फिर से सुमिरनी के बारे में कहते हैं :

कबीर माला काठ की, बहुत जतन का फेर।
माला स्वास उस्वास की, जा में गाँठ न मेर॥

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 19, पृ.89)

वे कहते हैं कि माला फेरना बड़ी मेहनत का काम है, लेकिन लगातार मन की माला फेरना एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, जैसे कि साँसों का आना–जाना। यह प्रक्रिया बिना प्रयास के अनन्त समय तक चलती रहती है।

सुमिरनी माला में एक शिरोमणि गाँठ होती है। जब एक चक्र पूरा हो जाता है, तब इस माला को उलटा कर दिया जाता है, ताकि कहीं इसका उल्टा प्रभाव न पड़ जाए, क्योंकि मोतियों को एक ही दशा में दिशा में सुमिरना होता है। इसलिए कबीर सलाह देते हैं कि हमें मन की प्राकृतिक माला फेरनी चाहिए, जिसमें अनन्त होने के कारण, कोई गाँठ नहीं होती और न ही किसी उलटाने की ज़रूरत है।

आगे, वे कहते हैं :

माला मो से लड़ि पड़ी, का फेरत हौ मोय।
मन कै माला फेरि ले, गुरु से मेला होय॥

क्रिया करै अँगुरी गनै, मन धावै चहूँ ओर।
जेहि फेरे साईं मिलै, सो भया काठ कठोर।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 20-21, पृ.89)

कबीर कहते हैं, "सफ़ाई या मन साफ़ करने वाली क्रियाओं– जैसे कि माला फेरने की क्रिया आदि, को करते समय यदि आपका मन शान्त नहीं है, तो इनका करने का क्या लाभ? जब आप माला फेरते है और माला की परिक्रमाओं को अपनी अंगुलियों पर गिनते रहते हैं, तब हमारा मन, एक बिना लगाम के घोड़े के समान, भटकता रहता है। इस प्रकार की क्रियाओं का इसलिए कोई लाभ नहीं है। प्रभु को केवल जीवित संत–सत्गुरु के माध्यम से ही पाया जा सकता है, जब हम उस के निर्देशानुसार हम अपने मन को साध कर उलटना (अर्थात इसकी सामान्य बाहिर्मुखी व निम्नमुखी अवस्था से अंतर्मुखी व ऊर्ध्वमुखी अवस्था में लाना) सीख सकते हैं।" ध्यानाभ्यास और मन को एकाग्र करने की क्रिया केवल सुमिरन के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है, जिसे सत्गुरु द्वारा प्रदान किया गया हो, और किसी प्रकार से नहीं।

कबीर साहब फिर से इस बात पर ज़ोर देते हैं :

माला फेरे कहा भयो, हृदय गाँठि नहिं खोय।
गुरु चरनन चित राचिये, तो अमरापुर जोय।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 22, पृ.89)

बाहर क्या दिखलाइये, अंतर जपिये नाम।
कहा महोला खलक से, पड़ा धनी से काम।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 23, पृ.89)

सुमिरन जैसा कि इसका पहले वर्णन किया गया है, एक मानसिक व आन्तरिक प्रक्रिया है, और इसमें माला फेरने आदि या किसी अन्य यन्त्र का उपयोग इसके पर्याय के रूप में निष्फल होता है। सत्गुरु के चरणों ध्यान करक, उसकी आज्ञा का बेझिझक अनुसरण करके तथा उनका वास्तविक रूप से अभ्यास करके हम परमानन्द की अवस्था प्रप्त कर सकते हैं। इसका सत्गुरु के दिए गए सुमिरन के अलावा कोई अन्य लघु मार्ग नहीं है।

बाइबिल भी कहती है :

"नाम को अपने आप में ढालने वाले बनो, केवल श्रोता ही नहीं।"

– पवित्र बाइबिल (जेम्स 1:22)

तभी 'नये येरूसलम' में प्रवेश कर पाया जा सकता है।

❧

निष्कर्ष

'नाम' या 'शब्द' सबके अन्तर में बसता है। इससे अन्तर में ही सम्पर्क पाना है। बाहरी परम्पराएँ रीति–रिवाज़ और तथाकथित पुण्य की प्राप्ति के हेतु किए गए धार्मिक क्रिया–कलाप आदि इस मामले में कोई मदद नहीं कर सकते। जबकि अनिर्वचनीय दिव्यता का ख़ज़ाना हमारे भीतर छिपा हुआ है, हम इसकी बाहरी रूप से खोज करते रहते हैं, तो हमारे सारे प्रयास व्यर्थ चले जाते हैं।

एमर्सन इस सन्दर्भ में कहते हैं, "मानव शरीर प्रभु का मन्दिर है। इसलिए केवल उस मन्दिर के भीतर ही प्रभु के दर्शन हो पाते हैं।" एक एकाकी आत्मा या मानव आत्मा और परमात्मा के मध्य सम्पर्क केवल किसी संत–सत्गुरु द्वारा ध्वनि–धारा या 'शब्द' के माध्यम से ही बनाया जा सकता है। केवल नाम या सुमिरन के साधन से संत सतगुरू हमारी बिछुड़ी आत्मा का मिलाप परमात्मा से करवाता है।

एक अन्य संत, भीखा जी कहते हैं :

भीखा भूखा को नहीं, सबकी गठरी लाल।
गिरह खोल नही जानसी, ताते भया कंगाल।

ध्वनि–धारा या 'नाम' का सम्पर्क सुमिरन के माध्यम से होता है, जिससे शरीर से आत्मिक धारा का निकास हो पाता है। जब यह धारा जागृत अवस्था में आत्मा के केन्द्र पर पहुँचती है, तभी यह उस चेतन शक्ति से सम्पर्क करती है, जो सम्पूर्ण सृष्टि में विराजमान है। इस प्रकार से सुमिरन या 'नाम' की मधुर याद की प्रक्रिया 'नाम' से सम्पर्क पाने का पहला क़दम है। सबसे प्रथम कार्य सुमिरन या एक समर्थ सत्गुरु द्वारा दिए गए अभिसिक्त नामों का जाप करना है। दूसरा क़दम है आत्मा को शरीर में दोनों आँखों के पीछे अपने केन्द्र में लौटा कर 'नाम', जिसे 'शब्द',

'नाद', 'आकाशवाणी', 'कलमा', 'सरोशा' भी कहा जाता है, से सम्पर्क कराना। इस 'शब्द' के दो रूप हैं : पहला, 'ज्योति' तथा दूसरा, 'श्रुति,' जिनका अनुभव आत्मा तब करती है, जब वह उस सत्ता के सम्पर्क में आती है। तब वह प्रभु की ज्योति के दर्शन होते हैं और अन्तर में जारी व सारी धुनों की मधुर संगीतलहरियों का श्रवण प्राप्त होता है, जिनसे एक उत्कृष्ट व अकथनीय मिठास उत्पन्न होती है– इतनी मीठी कि उनका बयान लफ़्ज़ों में किया नहीं जा सकता।

एक मुस्लिम संत, फ़रीद कहते हैं :

फरीदा सकर खंडु निवात गुडु माखिओ माँझा दुधु॥
सभे वसतू मिठीआँ रब न पुजनि तुधु॥

– आदि ग्रंथ (सलोक सेख फरीद, पृ०1379)

यह एक क्रियात्मक प्रक्रिया का विषय है, जिसका व्यक्तिगत रूप से ही अनुभव किया जा सकता है। यह कोई रोज़मर्रा का या सिर्फ़ बातचीत का मामला नहीं है, बल्कि आंतरिक सम्पर्क द्वारा अनुभव का। जिस किसी ने इसके मीठे अमृत को चखा है, उसने इसका बयान बढ़–चढ़ कर किया है।

एक बार गुरु नानक भारत के महान शासक, बाबर से मिले, जो तब नशा कर रहे थे। उन्होंने इसे गुरु नानक को भी पेश किया, जिन्होंने बाबर से कहा :

नशा भंग-शराब का उतरि जात प्रभात,
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात।

– जनम–साखी, गुरु नानक (भाई बाला)

जिस किसी ने इसे थोड़ा सा भी चखा है, वह इसका स्वाद कभी नहीं भूल सकता है। इसके सामने संसार के सभी आनन्द और अन्य दूसरी पदार्थ उनकी नज़रों में अपना मूल्य और वजन खो देते हैं।

प्रभु को लगातार याद करना, फिर, इससे जुड़े व्यक्ति को एक जागृत अवस्था प्रदान करता है। टेन्निसन, अपने संस्मरणों में जागृत भाव–समाधि की अवस्था के अनुभव का उदाहरण देते हैं, जिसको जानना रोचक हो सकता है। वे कहते हैं :

> बचपन से ही, जब मैं बिल्कुल अकेला हुआ करता था, एक प्रकार की जागृत भाव–समाधि का अनुभव मैं करता आया हूँ। यह प्रायः तब होता था, जब शांत अवस्था में मैं अपना ही नाम दोहराता रहता था, जिससे कि, एक ही पल में, जैसेकि व्यक्तित्व की चेतनता की गहनता में से, व्यक्तित्व ही घुल–मिल कर धुंधला होता एक अन्तहीन सत्ता में ओत–प्रोत होता प्रतीत होता था। यह कोई उलझ भरी परिस्थिति नहीं थी, बल्कि स्पष्ट से स्पष्ट व निश्चित से निश्चित, वर्णनातीत, जहाँ मृत्यु प्रायः एक हास्यास्पद रूप से असम्भव प्रतीत होती थी और व्यक्तित्व का हनन, एक विनाश न होकर, मात्र एक सच्चा जीवन। मैं अपने अशक्त वर्णन पर शर्मिन्दा हूँ। क्या मैने यह नहीं कहा था कि यह अवस्था अनिर्वचनीय है?
>
> (श्री बी. पी. ब्लड के नाम एक पत्र में, मई 7, 1874)

यह जागृत अवस्था, जिसे टेन्निसन ने अपना शांत अवस्था में अपने नाम को दो या तीन बार याद करने पर आयी, वह अपने आपे डूब जाने, जो अपनी आत्मा में खो जाना है, से प्राप्त हुई। यदि हम निरन्तर सुमिरन द्वारा अपने स्त्रोत अर्थात प्रभु में डूब जाएँ, अपने आपे की व्यष्टि को उस समष्टि में खो कर, तो कितनी अधिक चेतनता और जागृतता का मादक अनुवभ हमें प्राप्त होगा! इसका हम भली प्रकार से अंदाज़ा लगा सकते हैं।

मेरे वचनों को धैर्यतापूर्वक सुनने का धन्यवाद।